❀ श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः ❀

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः

नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक ।
भक्ति अधोक्षज की अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥

सब धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर ।
किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो, श्रम व्यर्थ सभी, केवल बंधनकर ॥

वर्ष ६ | गौराब्द ४७४, मास—श्रीधर ८, वार—क्षीरोदशायी शनिवार, ३२ आषाढ़, सम्वत् २०१७, १६ जुलाई १९६० | संख्या २

श्रीचौराग्रगराय-पुरुषाष्टकम्

व्रजे प्रसिद्धं नवनीतचौरं गोपाङ्गनानांच दुकूलचौरम् ।
अनेक-जन्मार्जित-पापचौरं चौराग्रगण्यं पुरुषं नमामि ॥१॥

श्रीराधिकाया हृदयस्य चौरं नवाम्बुद-श्यामल-कान्ति-चौरम् ।
पदाश्रितानाञ्च समस्त-चौरं चौराग्रगण्यं पुरुषं नमामि ॥२॥

अकिञ्चनीकृत्य पदाश्रितं यः करोति भिक्षुं पथि गेहहीनम् ।
केनाप्यहो भीषण-चौर ईदृग् दृष्टः श्रुतो वा न जगत्त्रयेऽपि ॥३॥

यदीयनामापि हरत्यशेषं गिरि-प्रसाराणपि पापराशीन् ।
आश्चर्यरूपो ननु चौर ईदृग् दृष्टः श्रुतो वा न मया कदापि ॥४॥

धनञ्च मानञ्च तथेन्द्रियाणि प्राणांश्च हृत्वा मम सर्वमेव ।
पलायसे कुत्र धृतोऽद्य चौर त्वं भक्तिदाम्नासि मया निबद्धः ॥५॥

छिनत्सि घोरं यमपाशबन्धं भिनत्सि भीमं भवपाशबन्धम् ।
छिनत्सि सर्वस्य समस्त-बन्धं नैवात्मनो भक्त कृतन्तु बन्धम् ॥६॥

यन्मानसे तामसराशि-घोरे कारागृहे दुःखमये निबद्धः ।
लभस्व हे चौर ! हरे ! चिराय स्वचौर्यदोषोचित दण्डम् ॥७॥

कारागृहे वस सदा हृदये मदीय, मद्भक्तिपाश-दृढबन्धननिश्चलः सन् ।
त्वां कृष्ण हे ! प्रलय-कोटिशतान्तरेऽपि सर्वस्वचौर हृदयान्न हि मोचयामि ॥८॥

अनुवाद—

जो व्रजमें (गोपियोंके) नवनीत चोर तथा व्रजाङ्गनाओंके वसन-चोरके रूपमें विख्यात हैं और जो (अपने भक्तोंके) अशेष जन्मोंके संग्रहीत पापोंको हरण करते हैं, उन चोरशिरोमणिको मैं नमस्कार करता हूँ ॥१॥

जो श्रीमती राधिकाके चित्तको चुरानेवाले चोर हैं, जो नवीन मेघोंकी कान्तिके चोर हैं और जो अपने चरणाश्रित भक्तोंका सब कुछ चुरा लेते हैं, उन चोर शिरोमणिको मैं प्रणाम करता हूँ ॥२॥

जो अपने चरणाश्रित लोगोंको (उनका पुत्र-परिवार और धन-सम्पति सब कुछ हरण कर) अकिंचन कर उनको गृहहीन और पथका भिखारी बना देते हैं, उनके जैसा भीषण चोर संसार भरमें कोई न तो देखा है और न सुना ही है ॥३॥

जिनका नाम मात्र ही लोगोंके पर्वतके समान पाप-राशिको सम्पूर्ण रूपसे हरण कर लेता है अर्थात् नष्ट कर डालता है, अहो ! मैंने ऐसा आश्चर्य चोर न तो कभी देखा है और न सुना ही है ॥४॥

हे चोर ! तुम मेरे धन, मान, इन्द्रिय और प्राण आदि सबको हरण कर कहाँ भाग रहे हो ? मैंने आज तुम्हें पकड़ लिया है। अब मैंने तुम्हें भक्ति रज्जुसे बाँध रखा है ॥५॥

तुम मनुष्यमात्रके भयंकर यम-पाशको छिन्न-भिन्न कर सकते हो। इतना ही नहीं, सबके समस्त प्रकारके बन्धनोंको तो छिन्न-भिन्न कर सकते हो, परन्तु अपने भक्तों द्वारा बाँधे गये अपने बंधनको तुम छिन्न नहीं कर पाते ॥६॥

अतएव हे चोर ! हे हरि ! तुम मेरे हृदयरूपी घोर अन्धकारपूर्ण दुःखमय कारागारमें सदाके लिये बन्द होकर अपनी चोरीका उचित फल भोग करो ॥७॥

तत्पश्चात् तुम मेरे हृदय-कारागारमें मेरी भक्ति के दृढ़ पाशमें बँधकर सदा-सर्वदा स्थिर निवास करो। हे कृष्ण ! हे सर्वस्व-चोर ! करोड़ों-करोड़ों प्रलयोंके अन्तमें भी कभी भी मैं अपने हृदयसे तुम्हें मुक्त नहीं करूँगा ॥८॥

श्रीप्रबोधानन्द

श्रीचैतन्यदेवका दक्षिण-भ्रमण और श्रीरङ्गममें चातुर्मास्यव्रत-पालन

श्रीचैतन्य महाप्रभुने शकाब्द १४३३ के प्रारंभमें दक्षिणात्यके तीर्थोंमें भ्रमण करनेके बहाने वहाँके भक्तजनोंमें अपनी कृपाका वितरण किया था। उन्होंने पुरीसे प्रारम्भ कर सबसे पहले गोदावरी-संगमका दर्शन किया और पीछेसे वर्त्तमान मद्रास-प्रदेशके विभिन्न तीर्थस्थानोंमें भ्रमण किया। आषाढ़ी शुक्ला एकादशी तिथिको वे श्रीरङ्गक्षेत्रमें पधारे थे। चातुर्मास्य-काल उपस्थित देखकर दसनामी संन्यासियोंकी विधिके अनुसार उन्होंने रङ्गक्षेत्रमें ही चार-महीने वास करनेका संकल्प किया। श्रीरङ्गममें श्रीसम्प्रदायके वैष्णवोंका वास है। दक्षिणके साम्प्रदायिक वैष्णवोंमें सदाचार-निष्ठाकी प्रधानता होती है। वहाँके गाँवोंमें-जहाँ पारमार्थिक वैष्णवोंका निवास है, स्मार्त ब्राह्मणोंको वास करनेकी किसीप्रकारकी सुविधा नहीं होती। उस समय श्रीरङ्गक्षेत्र केवलमात्र 'श्री' सम्प्रदायके वैष्णवोंका ही तीर्थ था। इसीलिये श्रीचैतन्य महाप्रभुजी विष्णुभक्ति परायण सदाचार-सम्पन्न वैष्णवोंके निकट चार महीने रह कर श्रीरङ्गनाथके दर्शन किये और वहाँ भगवत्-कथाका प्रचार कर जीवोंको हरि-भजनका उपदेश प्रदान किये।

उस समय श्रीरङ्गक्षेत्रमें एक परम भक्त ब्राह्मण परिवार वास करता था। परिवारके तीनों भाई—तिरुमलय, वैंकेट और प्रबोधानन्द* श्रीसम्प्रदायके वैष्णव थे। ये लोग कुछ दिन पूर्व ही मैसूर प्रदेशसे आकर श्रीरङ्गममें बसे थे। वास्तवमें ये लोग आन्ध्र या उत्तरप्रदेशके अधिवासी थे। श्रीमन्महाप्रभुजी उस विप्रवंशकी भक्ति-निष्ठा और सदाचारको देखकर बड़े सन्तुष्ट हुए और उनके बारंबारके अनुरोध पर उनके घर पर चातुर्मास्यके चार महीने व्यतीत किये। मध्यम भ्राता वैंकेटके पुत्र ही सुप्रसिद्ध षड्-गोस्वामियोंमेंसे एक श्रीगोपालभट्ट हैं। श्रीसम्प्रदायमें श्रीलक्ष्मी-नारायणकी उपासना होती है। परन्तु श्रीमन्महा प्रभुकी आन्तरिक कृपाके प्रभावसे यह भट्ट-परिवार श्रीकृष्णके रस और प्रेम-भक्तिका आस्वादन कर श्रीकृष्णकी उपासनामें प्रविष्ट हुआ। श्रीतिरुमलयके सम्बन्धमें हमें अधिक जानकारी प्राप्त नहीं है, फिर भी यह निश्चित रूपमें कहा जा सकता है कि वे भी श्रीचैतन्य महाप्रभुके परम भक्त थे, श्रीचैतन्य महाप्रभु ही उनके प्राण थे। श्रीवैंकेट भट्टके साथ श्रीचैतन्य देवका जो कथोपकथन हुआ था, उसका उल्लेख श्रीचैतन्यचरितामृतके नवें परिच्छेद में पाया जाता है।

गोपाल भट्टके गुरु प्रबोधानन्दजी श्रीकृष्ण-लीलाकी तुंगविद्या सखी हैं।

श्रीप्रबोधानन्दकी श्रीचैतन्यमहाप्रभुके प्रति अति असीम प्रीति थी। इनकी सत्शिक्षाके प्रभावसे श्रीवैंकेटके पुत्र श्रीगोपालभट्ट श्रीगौड़ीय वैष्णवोंके एक प्रधान आचार्य हुए हैं। श्रीचैतन्य महाप्रभुके सेवकों में श्रीप्रबोधानन्दका स्थान अत्यन्त उच्च है। श्रीकविकर्णपूरने स्व-रचित 'श्रीगौर-गणोद्देश-दीपिकामें लिखा है कि श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती श्रीकृष्णलीलाकी तुंगविद्या सखी हैं। 'श्रीहरिभक्ति-विलासके प्रारम्भमें ऐसा लिखा है कि श्रीभगवत्प्रिय श्रीप्रबोधानन्दके शिष्य गोपालभट्टने श्रीरूप, श्रीसनातन एवं श्री रघुनाथदासका सन्तोष विधान करते हुए 'हरिभक्ति विलासकी रचना की है। श्रीभक्तिरत्नाकरमें लिखा है—

---

* प्रबोधानन्दका पूर्वनाम 'गोपाल गुरु' था। पाठ भेदसे प्रबोधानन्दके बदले 'गोपाल गुरु'-यह नाम भी देखा जाता है।

केह कहे,—प्रबोधानन्देर गुण अति ।
सर्वत्र हईल याँर ख्याति 'सरस्वती' ॥
पूर्णब्रह्म श्रीकृष्ण चैतन्य भगवान् ।
ताँर-प्रिय, ताँहा बिना स्वपने नाहि आन॥
परम-वैराग्य-स्नेह-मूर्त्ति मनोरम ।
महाकवि गीत-वाद्य-नृत्ये अनुपम ॥
याँर काव्य * सुनि सुख बाढ़ये सबार ।
प्रबोधानन्देर महामहिमा अपार ॥

अर्थात्—कोई कोई कहते हैं—प्रबोधानन्द बड़े गुणी हैं और सर्वत्र 'सरस्वती' के नामसे प्रख्यात् हैं । पूर्णब्रह्म श्रीकृष्णचैतन्य इनको बड़े प्रिय हैं। भगवान श्रीकृष्णचैतन्यके अतिरिक्त ये दूसरे किसी को स्वप्नमें भी अपना नहीं जानते हैं। ये परम वैराग्यवान हैं, स्नेहकी तो मानो मनोहर मूर्ति ही हैं। गाने-बजाने और नृत्यकी कलामें अपनी तुलना आप ही हैं, उन सब गुणोंके अतिरिक्त वे महाकवि भी हैं। इनके रचित काव्योंका रसास्वादनकर सबको बड़ा आनन्द होता है। इस प्रकार प्रबोधानन्दकी महिमा बड़ी अपार है।

श्रीप्रबोधानन्दजीका श्रीगौर-चरणाश्रय

जब श्रीमन्महाप्रभुजी दक्षिण-भ्रमणकर श्रीजगन्नाथ पुरी लौट गये, तब उक्त विप्र-परिवार श्रीचैतन्यदेवके विरहमें बड़ा ही कातर हो गया। श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती तो कुछ ही वर्षोंके भीतर श्रीकृष्ण चैतन्यके हृदयगत उपासनामें प्रगाढ़रूपसे प्रविष्ट हो गये। वे अपने मनोभिष्ट भजन करनेके लिये श्रीरङ्गको छोड़ श्रीगौरके चरणकमलोंका आश्रय लेकर मथुरामण्डलके काम्यवनमें उपस्थित हुए और वहीं रहकर भजन करने लगे। श्रीगोपाल भट्टके हृदयमें भी व्रजधाममें वास करनेकी तीव्र लालसा उत्पन्न हुई। उन्होंने भी अपने चाचाजीका पदांकानुसरण किया।

कुछ लोग ऐसा प्रश्न करते हैं कि यदि श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती श्रीगौराङ्गदेवके इतने अधिक प्रिय थे, तब क्या कारण है कि श्रीचैतन्यचरितामृतकार श्रीकृष्णदास कविराजने स्वरचित ग्रन्थोंमें गौरभक्त-पाठकोंकी प्रीतिके लिये उनका कहीं भी वर्णन नहीं किया है ? इसके उत्तरमें श्रीभक्तिरत्नाकरका वर्णन ही काफी है। ग्रन्थकार श्रीघनश्याम नरहरि चक्रवर्त्ती लिखते हैं—

श्रीगोपाल भट्टेर ए सब विवरण ।
केह किछु बले, केह किछु ना करे वर्णन ॥
ना बुझिया मर्म इथे कुतर्क ये करे ।
अपराध-बीज तार हृदये संचारे ॥
परम रसिक पूर्व पूर्व कविगण ।
वर्णिते समर्थ हईया ना करे वर्णन ॥
राखिलेन मध्ये मध्ये वर्णन करते ।
वर्णिवे ये कविगण ताँहार निमित्ते ॥
श्रीगोपाल भट्टे हृष्ट हईया आज्ञा दिला ।
ग्रन्थे निज-प्रसङ्ग वर्णिते निषेधिला ॥
केने निषेधिला,—इहा के बुझिते पारे ?
निरन्तर अतिदीन माने आपनारे ॥
कविराज ताँर आज्ञा नारे लंघिवारे ।

(भक्तिरत्नाकर १ ला तरङ्ग)

इसका तात्पर्य यह है कि गोपालभट्टके सम्बन्धमें जो विवरण ऊपरमें आया है, उसका कुछ कवियोंने आंशिक रूपमें वर्णन किया है, और कुछने वर्णन ही नहीं किया है—इसमें कुछ गूढ़ रहस्य है। जो लोग इस विषयका मर्म न जानकर व्यर्थ ही तर्क-वितर्क करते हैं, उनका भयानक अपराध हो पड़ता है। प्राचीन कवि परम रसिक थे। उनमें वर्णन करनेकी शक्ति रहने पर भी उन्होंने जान-बुझकर बीच-बीचमें कुछ छोड़कर वर्णन किया है; जिससे आगे आने वाले कवि भी उस विषय में कुछ वर्णन कर सकें। श्रीचैतन्यचरितामृतकी रचनाके समय सब श्रीकृष्ण दास कविराज गोस्वामी श्रीगोपाल भट्टकी आज्ञा-

* इस प्रबन्धमें पाठ भेदसे 'काव्य' के स्थल पर 'वाक्य' देखा जाता है। श्रीभक्तिरत्नाकर मूलमें-'काव्य' पाठ ही है।

कृपा प्रर्थाना करने गये थे, तब श्रीगोपाल भट्टने कृपाकर अपनी आज्ञा तो दे दी, परन्तु ग्रन्थमें कहीं भी अपने सम्बन्धमें कुछ भी लिखनेके लिये निषेध कर दिया। उन्होंने क्या मना किया—इसे तो वे ही जाने, भला दूसरा कौन समझ सकता है, परन्तु कुछ कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि वे अपनेको तृणादपि सुनीच मानते थे। जैसा भी हो, कविराज गोस्वामी उनकी आज्ञाका उलंघन कैसे कर सकते थे? यही कारण है कि कविराज गोस्वामीने श्रीचैतन्यचरितामृतमें कतिपय कृष्णके परमप्रिय पार्षदोंका जीवन-चरित्र वर्णन नहीं किया है।

कुछ लोगोंका कथन है, श्रीप्रबोधानन्द द्वारा रचित काव्योंसे स्वकीयवादकी ही पुष्टि होती है और इसीलिये श्रीरूपानुग गौरभक्तोंने पारकीय भजनकी उत्कर्षता देख कर श्रीसरस्वती-गोस्वामी प्रभुके सम्बन्धमें अधिक कुछ नहीं लिखा है। जैसा भी हो, श्रीनरहरिदास जैसे निरपेक्ष श्रीरूपानुग श्रीचैतन्याश्रित भक्तमात्र ही सौभाग्यवान हैं। इसलिये सबको उचित है कि वे कुतर्क छोड़ कर श्रीप्रबोधानन्दके विमल गौरानुगत्य और श्रीवृन्दावनेश्वरीकी पारकीय-दास्य-माधुरीका निरन्तर आस्वादन करें।

श्रीप्रबोधानन्दके ग्रन्थ

श्रीप्रबोधानन्दके भाव-समूह परम परिस्फुट हैं। उनके रचित काव्योंमें भाषाका गांभीर्य और माधुर्य दोनों ही पाये जाते हैं। श्रीचैतन्य महाप्रभुके अनुगत प्रत्येक वैष्णव श्रीप्रबोधानन्दके 'श्रीवृन्दावन-शतक' का नित्य पाठ कर अपूर्व आनन्द प्राप्त करते हैं। उनका 'श्रीनवद्वीप-शतक' ग्रन्थ भी श्रीवृन्दावन-शतक जैसा ही उच्चकोटिका ग्रन्थ है। श्रीप्रबोधानन्द द्वारा रचित 'श्रीराधा-सुधानिधि*' सम्पूर्ण विश्वमें एक अतुलनीय ग्रन्थ है। इस ग्रन्थको पढ़ कर साधारण-काव्यप्रिय पाठकोंको भले ही सुखानुभूति न हो, परन्तु श्रीहरि-रस-मत्त निष्कपट भक्तजनोंके लिये वह प्राणोंसे भी बढ़ कर परम निधि-स्वरूप है। रुचिके तारतम्यसे उत्कर्षताकी भी ह्रास-वृद्धि होती है। इसीलिये पाठकोंकी सुकृतिके ऊपर ये लोकातीत व्रजरसमूलक भावसमूह कार्य करते हैं। 'विवेक-शतक' नामक इनका एक और भी ग्रन्थ है, जिसका उल्लेख अध्यापक अफ्रेतरके ग्रन्थमें पाया जाता है और बरहमपुर निवासी परलोकगत रामदाससेन महाशयने उस ग्रन्थको देखा है। 'श्रीचैतन्यचन्द्रामृत'—ग्रन्थका बंगालमें बहुत प्रचार है। श्रीगौर-विरोधी भी इस ग्रन्थको पढ़ कर अपने-अपने चित्तकी पवित्रता अनुभव करेंगे और इसमें कोई सन्देह नहीं कि श्रीगौरानुगतजन इसका पाठ कर निश्चय ही परमानन्द अनिर्वचनीय सुखसागरमें निमग्न होंगे। 'संगीत माधव'—नामक एक और भी इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ है।

श्रीप्रबोधानन्द और प्रकाशानन्द कदापि एक व्यक्ति नहीं हैं

किसी-किसीका कहना है कि वाराणसीके मायावादी प्रकाशानन्द और वैष्णवाग्रगण्य प्रबोधानन्द एक व्यक्ति हैं। परन्तु हम उनकी इस बात पर किसी प्रकार भी विश्वास करनेको तैयार नहीं हैं।

काशीवासी 'प्रकाशानन्द' नामक मायावादी संन्यासीके सम्बन्धमें श्रीचैतन्यभागवत, मध्यखण्ड, तृतीय अध्यायमें इस प्रकार लिखा है—

> एइ रूपे नवद्वीपे प्रभु विश्वंभर।
> भक्तिसुखे भासे लइ सर्व अनुचर॥
> एक दिन वराह-भावेर श्लोक सुनि।
> गर्जिया मुरारी-घरे चलिला आपनि॥
> गुप्त वाक्ये तुष्ट हइ वराह ईश्वर।
> वेद प्रति क्रोध करि बलये उत्तर॥
> हस्त,पाद, मुख मोर नाहिक लोचन।
> वेदे मोर एइ मत करे विडम्बन॥

* इस ग्रन्थका दूसरा नाम है—'श्रीराधा-रस-सुधानिधि'।

काशीते पढ़ाय बेटा 'प्रकाशानन्द' ।
सेई बेटा करे मोर अंग खण्ड-खण्ड ॥
बाखानये, वेद मोर विग्रह ना माने ।
सर्वांग हइल कुष्ठ तबु नाहि जाने ॥
सर्व यज्ञमय मोर ये अंग पवित्र ।
अजभव आदि गाय याँहार चरित्र ॥
पुण्य पवित्रता पाय ये अंग-परशे ।
ताहा मिथ्या बले बेटा कौन साहसे ?

यह घटना १४२५ शकाब्दके पश्चात्से लेकर १४३० शकाब्दके बीच की है। श्रीमन्महाप्रभु १४३३ शकाब्दमें श्रीरंगममें पधारे थे तथा तीनों भ्राताओंमें श्रीप्रबोधानन्द पादको भी मिले थे। उस समय वे तीनों भाई 'श्री' साम्प्रदायिक श्रीरामानुजीय वैष्णव थे। रामानुजीय वैष्णव विशिष्ट-द्वैतवादी होते हैं तथा वैकुण्ठाधिपति श्रीनारायण-विग्रहके उपासक होते हैं। श्रीप्रबोधानन्द भी श्रीनारायणके उपासक विशिष्ट-द्वैतवादी थे। इधर प्रकाशानन्द ठीक उसी समय शंकराचार्यके द्वारा प्रवर्त्तित मायावादके प्रधान आचार्य थे। इन दोनोंको एक व्यक्ति मानना अथवा दोनोंको समान समझना निरी मूर्खताकी बात है।

श्रीचैतन्यभागवतके मध्यखण्ड बीसवें अध्यायमें भी प्रकाशानन्दके सम्बन्धमें ऐसा उल्लेख है—

बलिते प्रभुर हइल ईश्वर आवेश ।
दन्त कड़मड़ि करि बलये विशेष ॥
संन्यासी प्रकाशानन्द बसये काशीते ।
मोरे खण्ड-खण्ड बेटा करे भालमते ॥
पढ़ाय वेदान्त, मोर 'विग्रह' ना माने ।
कुष्ठ कराइलुँ अंगे, तबु नाहि जाने ॥
अनन्त ब्रह्माण्ड मोर ये अंगेते बैसे ।
ताहा 'मिथ्या' बले बेटा केमन साहसे ॥
सत्य कहों मुरारी, आमार तुमी दास ।
ये ना माने मोर अङ्ग, सेई-जाय नाश ॥
सत्य मोर लीलाकर्म, सत्य मोर स्थान ।
इहा 'मिथ्या' बलि मोरे करे खान-खान ॥
ये-यशः श्रवणे आजि अविद्या विनाश ।
पापी अध्यापक बले 'मिथ्या' से विलास ॥
हेन पुण्यकीर्त्ति प्रति अनादर यार ।
से कभु ना जाने गुप्त मोर अवतार ॥

श्रीप्रकाशानन्द एकदण्डि-शांकर-सम्प्रदायके संन्यासियोंके तत्कालीन प्रख्यात नेता थे। और श्रीप्रबोधानन्द-मैसूर-प्रदेशसे आकार श्रीरङ्ग क्षेत्रमें वास करने वाले रामानुजीय त्रिदण्डी संन्यासी थे। प्रकाशानन्द—काशीके रहनेवाले मायावादी संन्यासी थे और प्रबोधानन्द—काम्यवनमें रहकर भजन करनेवाले परम वैष्णव थे। एक उत्तर भारतके निवासी थे, दूसरे दक्षिण प्रदेशके वैष्णव थे। एक-निर्विशेषवादी थे, दूसरे—विशिष्टाद्वैत सविशेषवादी थे और पीछे से अचिन्त्य-द्वैताद्वैत-मताश्रित थे। प्रकाशानन्द—विष्णु-वैष्णवोंके विरोधी थे, जो पीछेसे श्रीमन्महाप्रभुद्वारा उद्धार प्राप्त होकर भक्त बने थे; दूसरे—नित्यसिद्ध गौरपार्षद हैं और वैष्णवाचार्य श्रीगोपालभट्ट गोस्वामीके गुरुदेव हैं। गोपाल भट्ट-गोस्वामीके परमाराध्य पितृव्य (चाचा) और गुरुदेवको नित्यसिद्ध भक्तकुल चूड़ामणि न मान कर वैष्णव-विद्वेषी मायावादी और बद्धजीव कहना उनकी निन्दा और अवज्ञा करनी है, जो भीषणतम वैष्णव अपराध है।

श्रीकविराज गोस्वामीकी श्रीप्रबोधानन्दके सम्बन्धमें निरवताका कारण

श्रीचैतन्यचरितामृत मध्यलीला पच्चीसवें परिच्छेदमें और आदि लीलाके सातवें परिच्छेदमें मायावादी प्रकाशानन्दके सम्बन्धमें ही वर्णन किया है। १४२५ से १४३० शकाब्द तक जो व्यक्ति मायावादी है, १४३३ शकाब्दमें किस प्रकार काशीसे दक्षिण भारतमें उपस्थित होकर श्रीरामानुजीय श्रीवैष्णव हो सकता है ? फिर १४३५ शकाब्दमें वही व्यक्ति किस प्रकार पुनः मायावादी हो सकता है ?-यह बात समझमें नहीं आती। अतएव प्रकाशानन्द सरस्वती

और श्रीप्रबोधानन्दको एक व्यक्ति मानना अज्ञताका ही परिचय है। फलस्वरूप एक सुस्पष्ट ऐतिहासिक सत्यका इसप्रकार गला घोंटना कम दुःखकी बात नहीं है। श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतीने अपने स्वभाव-सुलभ दीनता और नम्रताके कारण श्रीगोपाल भट्ट द्वारा अपने सम्बन्धमें कुछ भी लिखनेको निषेध करवानेके कारण श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामीने श्रीचैतन्यचरितामृतमें श्रीप्रबोधानन्दके विषयमें कहीं भी कुछ नहीं लिखा है। परन्तु इसी लिये वर्त्तमान-कालमें उसका भयङ्कर परिणाम देखा जा रहा है। यदि श्रीप्रबोधानन्द प्रभुको यह मालूम होता कि उनके अप्रकट होनेपर भविष्यमें कुछ लोग ऐसा भ्रामक और अपराधपूर्ण विचार अपनायेंगे तो वे उसी समय श्रीभट्टगोस्वामी द्वारा श्रीकविराज गोस्वामीको वैसा करनेके लिये निषेध न किये होते। श्रीभक्तिरत्नाकरके पाठक इसे भलीभाँति अनुभव कर सकते हैं।

प्रबोधानन्दकी महिमा

श्रीप्रबोधानन्दके सम्बन्धमें भक्तिरत्नाकरमें ऐसा लिखा है—

तिरुमलय, वैंकेट, आर प्रबोधानन्द।
तीन भ्रातार प्राणधन—गौरचन्द्र ॥
लक्ष्मीनारायण-उपासक ए तीन पूर्वेते।
राधाकृष्ण-रसे मत्त प्रभुर कृपाते ॥
तिरुमलय, वैंकेट, प्रबोधानन्द तीने।
विचरये,-'प्रभु बिने रहिबे केमने ?
मो सबार सङ्गे परिहास के करिबे ?
कावेरी-स्नानेते सङ्गे केवा लगा जावे ?
चारिमास परे प्रभु हइला विदाय।
तीन भाइ क्रन्दन करये उभराय ॥
प्रभु तीन भ्रातार करिया आलिंगन।
कहिला अनेकरूप प्रबोध वचन ॥
केह कहे—प्रबोधानन्देर गुण अति।
सर्वत्र हइल यार ख्याति 'सरस्वती ॥'

पूर्णब्रह्म श्रीकृष्णचैतन्य भगवान्।
ताँर प्रिय ताँ-बिने स्वपने नाहि आन ॥

अर्थात् श्रीरङ्गमके तिरुमलय, वैंकेट और प्रबोधानन्द—तीनों भाइयोंके प्राण थे—श्रीचैतन्य महाप्रभु। ये तीनों भाई पहले लक्ष्मी-नारायणके उपासक थे। परन्तु श्रीचैतन्य महाप्रभुकी कृपासे ये लोग श्रीराधाकृष्णके परम प्रेमी भक्त हो गये थे। जब चातुर्मास्यके चार महीने बीतने पर श्रीचैतन्यदेव उनके घरसे विदा होकर दक्षिणात्यके अवशेष तीर्थ स्थानोंका दर्शन कर श्रीपुरीक्षेत्र जानेके लिये प्रस्तुत हुए, तो ये तीनों भाई बड़े दुःखी हुए। वे सोचने लगे कि हाय! अब हम प्रभुसे बिछुड़कर कैसे जीवन धारण करेंगे? हमलोगोंके साथ अब कौन मधुर-मधुर परिहास करेगा? हमें अपने साथ लेकर पुण्यतोया कावेरीमें स्नान करनेको ही कौन जायगा? श्रीमन्महाप्रभुजी तीनों भाइयोंको सान्त्वना देकर किसी प्रकार वहाँ से बिदा हुए। परन्तु इन्हें सान्त्वना कहाँ? ये तीनों महाप्रभुके विरहमें कातर होकर फूट-फूट कर रोने लगे। किसी-किसीका कहना है—श्रीप्रबोधानन्दजी बड़े गुणी थे। वे अपनी पाण्डित्य-प्रतिभाके कारण सब जगह 'सरस्वती' के नामसे प्रख्यात, थे। पूर्णब्रह्म श्रीकृष्णचैतन्य भगवानके चरणोंमें उनकी अतुलनीय प्रीति थी; वे उनके सिवा स्वप्नमें भी किसी दूसरेको नहीं जानते थे।

श्रीप्रबोधानन्दका 'संगीत माधव'

आध्यापक अफ्रेतरकी तालिकामें श्रीप्रबोधानन्द द्वारा रचित 'श्रीसंगीत माधव' नामक एक ग्रन्थका उल्लेख पाया जाता है। इस ग्रन्थका हमने संग्रह किया है। हमने इस ग्रन्थको 'सज्जनतोषणी' नामक बंगला पत्रिकामें (वर्ष १८, संख्या ५ से लेकर १२ तकमें) प्रकाशित भी कर दिया है।

त्रिदण्डि संन्यासी—श्रीप्रबोधानन्द स्वरस्ती

श्रीसम्प्रदायके गृहस्थ वैष्णव घर-बार छोड़कर

किसी भी दशामें एकदण्ड-संन्यास ग्रहण नहीं करते। वे त्रिदण्ड-संन्यास लेकर श्रीरामानुजीयाचार्य स्वामीके नामसे परिचित होते हैं। श्रीप्रबोधानन्दका 'श्रीचैतन्यचन्द्रामृत-ग्रन्थ पढ़कर कुछ लोग उनको 'ब्रह्म संन्यासी' मानते हैं, परन्तु किसी ठोस प्रमाणके अभावमें ऐसा स्वीकार करनेसे अनेक अड़चनें उपस्थित होती हैं।

—ॐ विष्णुपाद श्रीमद्भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी

मर्कट-वैरागी

श्रीरघुनाथके लिए श्रीमहाप्रभुकी शिक्षा

श्रीश्रीमन्महाप्रभु संन्यास लेकर जब शान्तिपुर पधारे थे, तब गोवर्धन मजुमदारके पुत्र श्रीरघुनाथदास वहाँ पर प्रभुके चरणोंमें उपस्थित हुए और पाँच-सात दिन प्रभुके चरणोंमें रहकर फिर आदेश लेकर घर चले गए। परन्तु घरपर उनका मन न लगा। वे श्रीमन्महाप्रभुके विरहमें दिन-रात तड़पते। उनके हृदयमें श्रीपुरीधाममें महाप्रभुजीके निकट जानेकी तीव्र इच्छा हुई। परन्तु मातापिताने उन्हें जाने नहीं दिया। फिरसे जब प्रभु शान्तिपुर आए,तब वे मातापिताकी आज्ञा लेकर प्रभुके चरणोंमें पुनः उपस्थित हुए और संसार-बन्धनसे छुटकारा प्राप्त करनेकी प्रार्थना करने लगे। प्रभुने तब उन्हें यह उपदेश दिया—

स्थिर हञा घर जाओ, ना हओ बातुल।
क्रमे-क्रमे पाय लोक भव सिन्धु कूल॥
मर्कट-वैराग्य ना करो लोक देखाञा।
यथा योग्य विषय भुञ्जो अनासक्त हञा॥
अन्तरे निष्ठा कर बाह्य लोक व्यवहार।
अचिराद् कृष्ण तोमाय करिबेन उद्धार॥
(चै. च. म. १६।२३७-२३९)

पागलपन न करो, अभी मनको स्थिर करके घर चले जाओ, धीरे-धीरे ही लोग संसार सागरके पार उतरते हैं। लोगोंको दिखाने के लिए बन्दरोंकी तरह मर्कट-वैराग्यका आचरण न करो, आसक्ति रहित-होकर केवल शरीरकी रक्षाके लिए ही विषयोंको ग्रहण करो। हृदयके अन्दर निष्ठा रक्खो और लौकिक व्यवहार ठीक-ठीक निभायो, शीघ्र ही कृष्ण उद्धार करेंगे।

श्रीरघुनाथका घर लौटना और विषयीकी तरह अपने भावको दिखाना

पुनः चरितामृतके अन्तखण्ड छठवें अध्यायमें लिखा है—

प्रभुर शिक्षाते तेहों निजघरे जाय।
मर्कट-वैराग्य छाड़ि हैला 'विषयीप्राय॥
भितरे वैराग्य बाहिरे करे सर्व कर्म।
देखिया त मातापितार आनन्दित मन॥
(६।१४-१५)

—प्रभुकी शिक्षा पाकर वे अपने घर लौट गए और मर्कटवैराग्य (देखावटी वैराग्य) का त्यागकर साधारण लोगोंकी तरह व्यवहार करने लगे,रघुनाथदासकी वैसी दशा देखकर उनके मातापिता बड़े आनन्दित-हुए।

श्रीचरितामृत अन्तिमखन्ड के दूसरे अध्यायमें छोटे हरिदासके सम्बन्धमें लिखा है—

प्रभु कहे—"वैरागी करे प्रकृति सम्भाषण।
देखिते ना पारों आमि ताहार वदन॥
दुर्वार इन्द्रिय करे विषय ग्रहण।
दारु-प्रकृति हरे मुनेरपि मन॥

क्षुद्र जीव सब मर्कट वैराग्य करिया।
इन्द्रिय चराञा बुले 'प्रकृति-सम्भाषिया'॥
प्रभु कहे मोरवश नहे मोर मन।
प्रकृति सम्भाषी वैरागी ना करे स्पर्शन॥
(२।११७-१८-१२०-११४)

—प्रभु कहते हैं—वैराग्य-वेश लेकर जो (भोग बुद्धिसे) स्त्री सम्भाषण करते हैं, मैं उनका मुँह नहीं देख सकता। उनकी असंयत इन्द्रियाँ सदा विषय-भोगकी ओर ही स्वाभाविक रूपसे छूटती रहती है। काठकी नारी-मूर्ति मुनियोंके मनको भी हरण कर लेती है। असंयतेन्द्रिय क्षुद्रजीव-समूह देखावटी मर्कट-वैराग्यका अवलम्बन करते हैं और स्त्रियोंसे अवैध संभाषणकर अपनी इन्द्रियोंको विषय भोगोंकी ओर ही लगाते हैं। ऐसे स्त्री सम्भाषणकारी व्यक्तियों को मेरा मन कदापि स्पर्श नहीं कर सकता है। मैं क्या करूं, मेरा मन मेरे अधीन नहीं। मैं विवश होकर ऐसा कररहा हूँ।

मर्कट-वैरागी अपराधी है, पतित हैं और श्री-महाप्रभुकी कृपासे वंचित हैं

इन पदोंमें मर्कट-वैरागी शब्दका प्रयोग हुआ है। मर्कट-वैरागी शब्दका वास्तविक अर्थ क्या है? इसका अनुसन्धान करना विशेष आवश्यक है। मर्कट-वैरागीवेष धारण करना एक भीषण अपराध है,इसमें कोई सन्देह नहीं। श्रीचैतन्य महाप्रभु उन्हें देखने व छूने तकके लिए भी तैयार नहीं हैं। इससे यह अच्छी तरह समझा जा सकता है, वे लोग कितने अपराधी हैं। पतितोंके उद्धार करनेके लिए ही जो दयालु प्रभु कलियुगमें अवतीर्ण हुए हैं, वे प्रभु जिन्हें त्याग देते हैं, वे कितने अधम हैं, कितने पतित हैं—बुद्धिमान सारग्रही व्यक्ति इसे भलीप्रकार समझ सकते हैं। इसलिए जिनका वैष्णव धर्ममें विश्वास है, वे विशेष सावधानीके साथ मर्कट-वैरागी वेषधारीका संग छोड़ दें और अपने आप भी जिससे मर्कट-वैरागी न हो जायें, सावधान हों।

मर्कट-वैरागी दो प्रकारके हैं—गृही और त्यागी

जिन्होंने घरबार छोड़कर संन्यास ग्रहण किया है उनमें ही जो मर्कट-वैरागी देखे जाते हैं, ऐसी बात नहीं, गृहस्थ आश्रममें भी अनेकों मर्कट-वैरागी देखे जाते हैं। इसलिए मर्कट-वैरागी दो प्रकारके होते हैं—गृही मर्कट-वैरागी और त्यागी मर्कट-वैरागी। जिस समय दासगोस्वामी घरपर थे, उससमय महाप्रभुने उन्हें गृहस्थ मर्कट-वैराग्यकी ओर लक्षकरके उपदेश दिया था। और जब छोटे हरिदासको लक्ष करके उपदेश दिया था,उससमय भिक्षाके ऊपर जीवन धारण करनेवाले वैरागी वेषधारी त्यागियोंकी ओर ध्यान दिलाया था। अब हमें देखना है कि गृहस्थ-आश्रममें रहनेवाले किनको मर्कट-वैरागी कह सकते हैं तथा गृह-त्यागियोंमें मर्कट-वैरागियोंके क्या लक्षण हैं?

गृही मर्कट-वैरागी कौन हैं

श्रीमन्महाप्रभुकी वाणीका तात्पर्य यह है कि जो लोग गृहस्थाश्रममें हैं, उनको बिना अधिकारप्राप्त हुए घर-बार नहीं छोड़ना चाहिए। जो लोग गृहत्याग करनेका अधिकारी हुए बिना ही गृहत्याग करनेके लिये व्याकुल हो पड़ते हैं अथवा गृह छोड़ देते हैं, वे अत्याचारी हैं। समय और अधिकार उपस्थित न होने तक कोई भी गृही व्यक्ति भिक्षाश्रममें प्रवेश करनेका अधिकारी नहीं है। जो लोग गृहस्थाश्रममें रहतेहुए देखावटी वैराग्य-भाव या वैराग्यवेष धारण करते हैं, वे गृहस्थ भी दोषी हैं। अनासक्त होकर विषयोंका भोग करनाही गृहस्थ-वैष्णवका धर्म है। जिसप्रकार आसक्त होकर विषयोंका भोग करनेसे वैष्णवताकी हानि होतीहै, आसक्तिके रहते-रहते गृह-त्याग अथवा घरपर रहते-रहते बिना आवश्यकताके विषयोंका भोग करनेसे भी ठीक उसी प्रकारकी हानि होती है। गृहस्थके लिए यह उचितहै कि वे घरपर रहकर अनासक्त भावसे जीवन निर्वाहके लिए आवश्यक मात्रामें विषयोंका भोग करते हुए गृहत्यागका अधिकार प्राप्त करें।

गृह त्यागका अधिकार

देखावटी वैराग्य गृहस्थोंके लिए नितांत अहितकर होता है। बाहरसे यथोचित रूपमें विषयोंका अनासक्त होकर भोग करना तथा अन्तरमें वैराग्यकी निष्ठा रखना ही गृहस्थका धर्म है। जब वैराग्य-निष्ठा पक्की हो जाती है, गृह त्यागका उपर्युक्त अधिकार और समय होता है। वे गृहस्थ व्यक्ति, जो कौपीन पहनते हैं, जटाजूट धारण करते हैं—मर्कट-वैरागी कहे जा सकते हैं। जो विवाह कर स्त्रीके साथ रहते हैं, वे गृहस्थ हैं। संन्यास किसे कहते हैं? धर्म और सज्जन पुरुषोंको साक्षी रख कर प्रतिज्ञा पूर्वक स्त्री-संग परित्याग करनेका नामही संन्यास है। जब तक हृदयमें पूर्ण वैराग्य उदय न हो जाय, तब तक वह अधिकार नहीं होता। जब कृष्णकी लीला-कथाओंके प्रति इतनी दृढ़ आसक्ति हो जाती है कि विषय-भोगोंकी ओर उसकी तनिक भी रुचि नहीं रह जाती, उसी समय गृह त्यागका अधिकार होता है।

भगवान कृष्णके प्रति आसक्ति ही आन्तर वैराग्य का लक्षण है

कृष्णके प्रति आसक्ति होनेसे ही कृष्णेत्तर विषयोंके प्रति स्वाभाविक वैराग्य पैदा हो जाता है। ज्ञान व विचारसे भोगोंके प्रति जो अश्रद्धा पैदा होती है, वह स्थाई वैराग्य नहीं है। भगवानके चरणोंमें भक्ति होनेसे विषय-भोगोंके प्रति जो उदासीन भाव आता है, इसे ही सहज (सच्चा) वैराग्य कहते हैं। शास्त्र विधिके अनुसार गृहस्थके स्त्री-संग को पाप-रहित कहा है।

असवर्ण-विवाहवाले या स्त्री-संगवाले गृहस्थ नहीं हैं

असवर्ण-विवाहादि शास्त्र-सिद्ध नहीं हैं और उससे गृहस्थ धर्मकी प्राप्ति नहीं होती। भ्रष्ट योगी अथवा अवैध स्त्री-संगीको गृहस्थ नहीं कहा जाता। गृहस्थ धर्म ही वर्णाश्रम धर्ममूलक है। असवर्ण या शास्त्र-विरुद्ध विवाहसे केवल कुछ हद तक कामना वासनाको चरितार्थ किया जा सकता है। यदि गृहस्थ व्यक्ति वैष्णव होना चाहते हैं, तो उन्हें सावधानीपूर्वक मर्कट-वैराग्य त्याग करना पड़ेगा।

श्रीदास गोस्वामीजीका आदर्श ही ग्रहण-योग्य है

श्रीमन्महाप्रभुने श्रीदासगोस्वामीजीको यथार्थ वैराग्यके उपदेश दिये थे, वे ठीक प्रभु आदेशानुसार विषयी-प्राय व्यवहार करने लगे। अर्थात् बाहरमें पूर्ण पापरहित होकर विषय कर्म करने लगे और अन्तरमें वैराग्य भाव दृढ़ करने लगे। 'विषयी प्राय'—शब्दका अर्थ है—विषयीकी तरह वेष, कर्म और व्यवहार ग्रहण करके भी हृदयसे अविषयी हो गए।

इनके पिताजीको महाप्रभु वैष्णव-प्राय कहते थे अर्थात् ऊपरसे वैष्णववेष और सब सदाचार-शिक्षा, श्रीविग्रह अर्चन, व्रत, तीर्थ यात्रा, अतिथि सेवा करते हुए भी संसारी विषयोंके प्रति आसक्ति थी। वैष्णव-प्राय होनेसे विषयी-प्राय होना अच्छा है। यदि वैष्णव-प्राय गृहस्थ साधुका संग करके अपनी उन्नति न करें, तो उन्हें भी मर्कट वैरागी कहा जा सकता है। वैष्णव चिन्होंको धारण करके हम त्यागी वैष्णव हैं ऐसा जो अभिमान करते हैं वे महाप्रभुके आदेशके विरुद्ध आचारण करते हैं। उपर्युक्त मर्कट-वैराग्यका जो लोग युक्ति-तर्क द्वारा अनुमोदन करते हैं, उनको भी महाप्रभुने मर्कट वैरागी ही माना है। गृहत्यागियों के अन्दर कितने प्रकारके मर्कट वैरागी होते हैं, इस पर विचार करना है। भक्ति द्वारा स्वभाविक वैराग्य जब तक हृदयमें पैदा नहीं होता, उससे पहिले ही जो गृहस्थ गृहधर्म छोड़ कर वैराग्य धारण करते हैं उनको मर्कट-वैरागी हो पड़नेकी सम्भावना अधिक होती है। किसी भी प्रकार स्त्री-प्रसंगमें पड़नेसे स्त्रियों से बातचीतकी वासना बढ़ती जाती है और उस वासनासे भक्तिमार्गमें बाधा पड़ जाती है। थोड़ीसी भक्ति रहने पर भी नारी-संगकी अभिलाषा दूर होते देर लगती है।

भक्ति-धर्म

छोटे हरिदासको यह शरीर छूटनेपर गन्धर्वलोक प्राप्त हुआ था। भक्तिदेवीका यह स्वभाव है कि जिस हृदयमें भक्ति पैदा हो जाती है—उनके हृदयके किसी कोनेमें जरा भी अनर्थ हो, तो उस भक्तिके प्रभावसे वह मूल सहित दूर हो जाता है। साधकको पुण्य द्वारा जो भोग मिलते हैं, उन्हें भोग कराकर वैराग्य उत्पन्न करा देती है। भक्तिदेवीकी इसप्रकारकी विचित्र महिमा है।

हरिदासके सम्बन्धमें प्रभुने जो कुछ कहा है—वह गृह-त्यागियोंके लिए मर्कट वैराग्य है। श्रीमन्महाप्रभुका कहना है—शास्त्र विधिद्वारा जो संन्यास लिए है—वे किसी प्रकार भी स्त्री-सम्भाषण नहीं कर सकते हैं। किसी न्यायकर्म या सत्कर्मका उद्देश्य करने पर भी उनके लिए स्त्री-सम्भाषण शोभा नहीं देता, यहाँ तक कि त्यागियोंके स्थानोंमें, अखाड़ों में, बर्तन मांजने आदि सेवाके लिए स्त्रियोंका रखना भी मर्कट-वैराग्यके अन्तर्गत है। जो वैरागी होकर अपनी प्रतिष्ठा और संन्यास धर्मके विरुद्ध स्त्रियोंसे मिलते-जुलते हैं, उनका मुख महाप्रभु नहीं देख सकते, अर्थात् सत् सम्प्रदायमें उनको गणना नहीं करते हैं।

दृढ़ वैरागी भी सावधान रहें, कारण काठकी स्त्रीमूर्ति भी मुनियोंका मन हरणकर लेती है

वैरागियोंको स्त्री-सङ्गसे सर्वदा सावधान रहना चाहिये। कितनी भी दृढ़ता रहे—उनके सम्पर्कसे अहित होनेकी पूरी सम्भावना होती है, किसी न किसी प्रकार भजनमें बाधा होगी ही। इन्द्रियोंका स्वाभाविक धर्म विषयोंकी ओर जाना है। काठकी नारी मूर्ति मुनियोंके मनको भी हरण कर लेती है।

यात्रा-थियेटर दर्शनकारी भी मर्कट-वैरागी हैं

त्यागी वेष लेकर जो यात्रा-थियेटर सिनेमामें स्त्रियोंके हावभाव दर्शन करते हैं, वे भी मर्कट-वैरागी हैं, इसमें सन्देह नहीं। दुर्बल जीव वैष्णव वेश धारण करके स्त्रियोंसे मिलते-जुलते हैं और इन्द्रियोंके भोगोंमें फँसे रहते हैं।

जो सब वैरागी भिक्षाका छलकरके स्त्रियोंसे मिलते-जुलते हैं, वे कभी भी महाप्रभुके सम्प्रदायमें रहने और प्रतिष्ठा पानेके अधिकारी नहीं हैं। प्रभुके पास जब वैष्णवजनोंने छोटेहरिदास पर कृपा करनेके लिए निवेदन किया तब महाप्रभु कहते हैं—'मैं किसी प्रकार भी स्त्री सम्भाषी-वैरागीको अपने पास नहीं रख सकता, मेरा मन उसका स्पर्श करना नहीं चाहता, तुमलोग बार बार मुझे किसलिये अनुरोध कर रहे हो? मेरा मन मेरे वशमें नहीं है। मन चाहता है, मर्कट-वैरागीका दर्शन व शरीर स्पर्श न करूँ।"

मर्कट-वैरागीके प्रति उपदेश

अहा! परम निर्मल महाप्रभुके शासन वाक्य कहाँ गए! इस निर्मल सम्प्रदायमें भी कलंकके रूप में मर्कट-गृहस्थ व मर्कट-वैरागी वैष्णवोंकी उत्पत्ति होती जा रही है। कितने ही गृहस्थ-वैष्णव दिखावटी वैराग्यवेष लेकरके अन्याय कार्य्यमें लगे हुए हैं। यदि सचमुच ही उनके हृदयमें वैराग्य उदय हुआ है तो उन्हें शास्त्र विधिके-अनुसार संन्यास ग्रहण करके स्त्री सम्भाषणसे दूर रहना चाहिये। यदि हृदयके किसी भी कोनेमें जरा भी स्त्री सम्भाषणकी वासना हो, तो त्यागीवेश ग्रहण न करें, मर्कट-वैराग्यको दूर रखकर सदा कृष्णनाम आनन्द सहित करें, आत्मोन्नतिमें अग्रसर हों। कच्ची अवस्थामें जल्दीबाजीमें वैराग्य वेश धारणकी कोई आवश्यकता नहीं है।

गृहस्थ व वैरागी दोनों कृष्णभक्तिके अधिकारी हैं। अपने अधिकारके अनुसार आश्रमवासकी आवश्यकता है। अधिक लोगोंका गृहस्थ आश्रममें अधिकार है। खूब थोड़े लोगोंका ही वैराग्य, वानप्रस्थ और ब्रह्मचर्य आश्रममें अधिकार है। अधिकारका मूल क्या है? स्वभाव या उम्र। केवल उम्रको अधिकारका मूल नहीं कह सकते। कारण ऐसा देखा जाता है कि बाल पक गए, मुखमें दाँत नहीं; परन्तु भोग करने की इच्छा प्रबल है। बाल सफेद हो गए हैं, फिर

भी उन्हें रङ्गकर काले कर लिये, सोनेके दाँत बँधा लिए, जावान होनेकी कैसी प्रबल इच्छा ! इस प्रकार वृद्ध गृहस्थ भी सांसारिक सुखोंमें लिप्त देखे जाते हैं। जब इन बूढ़ोंमें भी वैराग्य नहीं देखा जाता है, तब यह निश्चत हुआ कि, उम्रद्वारा अधिकारका निर्णय नहीं हो सकता। अस्तु स्वभाव ही वैराग्यका मूल है।

भक्तिकी आवश्यकता

गृहस्थ आश्रमीहों या वैराग्य आश्रमी, भक्ति ही सबका धन है। जिनका जिस आश्रममें रहनेका स्वभाव है, अपने अपने आश्रममें रहकर अनुकूल अवस्थाको पकड़कर कृष्ण-अनुशीलन करना ही कर्तव्य है। अधिकारको छोड़नेसे अनर्थकी उत्पत्ति होती है और भक्ति नष्ट हो जाती है। इसलिये मर्कट-वैराग्यको छोड़कर अपने-अपने अधिकरको भली-भाँति समझकर हृदयमें भक्तिदेवीका साम्राज्य स्थापितरूप परम मङ्गल लाभ करना ही सबप्रकारसे श्रेयस्कर है। जीव भक्तिदेवीकी कृपासे वञ्चित होकर ४ प्रकारके अनर्थों द्वारा ग्रसित हैं; (१) स्वस्वरूप भ्रम (२) असततृष्णा (३) अपराध (४) हृदयदौर्बल्य। भजन करते करते भक्तिदेवीकी कृपासे ये चार प्रकार के अनर्थ दूर हो जाते हैं तथा भजनमें निष्ठा हो जाती है। मर्कट-वैराग्य एक प्रधान हृदयकी दुर्बलता है। इसे यत्नके साथ दूर करने पर भजन शक्ति पैदा हो जाती है। कपटता, शठता, प्रतिष्ठाकी आशा इत्यादि शत्रु जो हमारे भजनमें बाधा उत्पन्नकर देते हैं, साधक इनपर विजय लाभकर लेता है। शुद्धभक्ति पैदा हो जाती है। जीवका जीवन शुद्धभक्तिकी कृपा लाभकर धन्यातिधन्य हो जाता है।

ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्ति विनोद ठाकुर

उपनिषद्-वाणी

[गताङ्क से आगे]

जिस प्रकार गीतामें संसारकी तुलना पीपलके वृक्षसे दी गयी है, उसी प्रकार यहाँ इस मंत्रमें शरीर-की तुलना पीपलके वृक्षके साथ दी गयी है। कठोप-निषदमें भी गुहामें प्रविष्ट छाया और धूपका दृष्टान्त दिया गया है। भाव दोनों जगह एक प्रायः एक ही प्रकारके हैं। मन्त्रका सारांश यह है कि मनुष्य-शरीर एक वृक्षके समान है। ईश्वर और जीव—ये दोनों सदा एक साथ रहने वाले दो मित्र पक्षी इस शरीर रूपी वृक्षके हृदय रूपी घोंसलेमें एक साथ निवास करते हैं। इन दोनोंमें एक—जीवात्मा तो उस वृक्षके फलरूप अपने कर्म-फलोंको अर्थात् प्रारब्धानुसार प्राप्त हुए सुख-दुःखको आसक्ति और द्वेषपूर्वक भोगता है और दूसरा—ईश्वर उन कर्म फलोंसे किसी प्रकारका किंचित भी सम्बन्ध न जोड़ कर केवल साक्षीके रूपमें देखता है।

पूर्वोक्त शरीर रूपी एक ही वृक्ष पर निवास करने पर भी जीवात्मा अपने साथ रहनेवाले उन परम सुहृद परमेश्वरकी ओर नहीं देखता, शरीरमें ही आसक्त होकर शरीर द्वारा किये गये कर्मोंके फल-स्वरूप सुख-दुःख आदि भोगोंको भोगनेमें ही रचा-पचा रहता है। यदि सौभाग्यवश किसी दिन भग-वानकी अहैतुकी कृपासे अपने परम सुहृद परमपुरुषकी महिमाके प्रति आकृष्ट होवे तो उन परम पुरुषके प्रति सेवा-प्रवृत्तिसे युक्त होने पर वह सर्वथा शोकरहित हो सकता है। पूर्वोक्त प्रकारसे परमेश्वरकी आश्चर्य-मयी महिमाके प्रति दृष्टिपात करके जीवात्मा जिस समय सबके नियन्ता, ब्रह्माके भी आदि कारण, रुक्मवर्ण-पुरुष, समग्र जगत्के स्रष्टा श्रीभगवानका साक्षात्कार कर लेता है, उस समय वह अपने समस्त पाप-पुण्यका समूल नाश कर उनसे सर्वथा सम्बन्ध-

रहित होकर परम निर्मल स्वरूपमें परम समताको प्राप्त हो जाता है। यहाँ 'रुक्मवर्ण-पुरुष'--शब्दसे श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुको लक्ष्य किया गया है।

जिस प्रकार शरीरकी सारी चेष्टाएँ प्राणके द्वारा होती हैं, उसी प्रकार इस विश्वमें जो कुछ हो रहा है, परमात्माकी शक्तिसे ही हो रहा है। यह बात जिसे समझमें आ जाती है, वह अपनेको विद्वान मान कर कभी भी बढ़-चढ़ कर बातें नहीं करता। क्योंकि वह जानता है कि उसके हृदयमें सर्वव्यापक परमेश्वर विराजमान हैं और उन्हींकी शक्तिसे ही समस्त व्यापार सम्पादित हो रहे हैं। फिर वह किस बातके लिए अभिमान करे। वह तो आत्मक्रीड़ा और आत्मरतिसे युक्त होकर सब समय भगवानके सेवा-सुखमें निमग्न रहता है। ऐसा यह ब्रह्मवेत्ता पुरुष अर्थात् भगवानका भक्त ब्रह्मवेत्ताओंमें भी श्रेष्ठ है। सबके शरीरके भीतर हृदयगुहामें विराजमान परम विशुद्ध प्रकाशमय परमब्रह्म परामात्माको, प्रयत्नशील, सत्यपरायण, तपस्वी, संयतेन्द्रिय, स्वार्थत्यागी और ब्रह्मचर्यका पालन करनेवाले व्यक्ति ही प्राप्त हो सकते हैं। इन गुणोंसे रहित होकर जो भोगोंमें आसक्त रहते हैं, भोगोंकी प्राप्तिके लिये नाना प्रकारके मिथ्या-भाषण करते हैं एवं अपने इन्द्रियोंका दमन नहीं कर पानेके कारण स्वेच्छाचारी हो पड़ते हैं और अपने वीर्यकी रक्षा नहीं कर सकते, वे स्वार्थपरायण-अविवेकी मनुष्य उन परमात्माके प्रति आकृष्ट नहीं होते और उनका अनुभव भी नहीं कर पाते। सत्यकी ही सर्वत्र विजय होती है। मिथ्याका कहीं भी आदर नहीं होता। परमात्मा सत्य स्वरूप हैं; सत्य ही उनकी प्राप्तिका साधन है। श्रीमद्भागवतमें भी ऐसा देखा जाता है—"तेषां स एव भगवान् दययेदनन्तः सर्वात्मनाश्रितपदो यदि निर्व्यलीकम्।" जो निष्कपट होकर तन, मन और वचन द्वारा श्रीहरिके चरणोंका आश्रय ले लेते हैं, वे ही भगवानकी कृपा प्राप्त करनेमें समर्थ होते हैं। जो मिथ्या भाषण, दंभ, कपटता द्वारा उन्नतिकी आशा रखते हैं, वे अन्तमें बुरी तरहसे निराश होते हैं। जिस मार्गसे परलोकमें जाया जाता है, वह देवयान मार्ग सत्यसे परिपूर्ण है। पूर्णकाम सत्यपरायण ऋषि लोग इसी देवयान मार्गसे परमधाममें पहुँचते हैं।

वे परमात्मा सबसे महान, अलौकिक और अचिन्त्य-स्वरूप हैं। विषयोंमें आसक्त मनके द्वारा उनकी चिन्ता नहीं की जा सकती है। परमात्मा सूक्ष्म भी सूक्ष्म और चिन्तनमें न आनेवाले हैं। वे दूरसे भी दूर हैं और निकटसे भी निकट, दर्शनकारीके भीतर ही उनके हृदय गुहामें छिपे हुए हैं। मनुष्यके प्राकृत नेत्र उनका दर्शन नहीं कर सकते हैं; इतना ही नहीं, वाणी आदि अन्य इन्द्रियोंद्वारा भी वे पकड़में नहीं आ सकते। तथा नाना प्रकारकी तपश्चर्या और कर्मोंकेद्वारा भी मनुष्य उन्हें नहीं पा सकता। परन्तु यदि मनुष्य सब भोगोंसे मुख मोड़ कर, निस्पृह होकर निर्मल हृदयसे निरन्तर एकमात्र उन्हींका ध्यान करे, तो इस प्रकार निर्मल हुए ज्ञानसे वह उनका साक्षात्कार कर सकता है।

जिस शरीरमें प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान—इन पाँच भेदोंवाला प्राण प्रविष्ट होकर शरीरको चेष्टायुक्त कर रहा है, उसी शरीरके भीतर हृदयके ठीक बीचोंबीच सूक्ष्मसे भी सूक्ष्मतम जीवात्मा वर्त्तमान है और निर्मल चित्तके द्वारा जाना जा सकता है। परन्तु यह चित्त प्राण और इन्द्रियोंको तृप्त करनेके लिये उत्पन्न हुई नाना प्रकारकी भोगवासनाओंसे मलिन और क्षुब्ध रहनेके कारण परमात्माके प्रति आकृष्ट नहीं होता। भोगोंसे विरक्त होकर परमात्म चिन्तन करने पर परमपुरुषका दर्शन होना संभव है। विशुद्ध अन्तःकरणवाले मनुष्य भोगोंसे सर्वथा विरक्त होकर यदि परमेश्वरका चिन्तन करे, तो वह उन्हें प्राप्त कर लेता है। परन्तु यदि वह सर्वथा निष्काम नहीं होता तो जिस-जिस लोकका मनसे चिन्तन करता है तथा जिन-जिन भोगोंको चाहता है, उन-उन लोकोंको ही जीतता है—उन्हीं लोकोंमें जाता है तथा उन-उन भोगोंको ही प्राप्त करता है। इसलिये सबको आत्मज्ञ पुरुषोंकी पूजा करनी चाहिये।

थोड़ासा विचार करने पर ही यह बात समझमें आ जाती है कि इस प्रत्यक्ष दिखायी पड़नेवाले जगतके रचयिता और परमाधार-स्वरूप कोई एक अव्यय पुरुष परमेश्वर अवश्य हैं। उन विशुद्ध प्रकाशमय पुरुषको निष्कामभावसे निरन्तर ध्यान द्वारा जो जान लेते हैं, उनका चित्त किसी प्रकारके भोग में आसक्त नहीं होता और अन्तमें वे रजोवीर्यमय शरीरको जीत लेते हैं अर्थात् उनका पुनर्जन्म नहीं होता। इसलिये वैसे लोगोंको बुद्धिमानकी 'संज्ञा' दी गयी है। जो लोग कामनाओंके दास होते हैं, इसलोक और परलोकमें इन्द्रिय-सुख ही जिनके काम्य हैं, वे भोगकी कामनाओंके कारण जहाँ जहाँ भोग उपलब्ध हो सकते हैं, वहाँ-वहाँ कर्मानुसार जन्म लेते हैं, मुक्त नहीं हो पाते। परन्तु जो भगवानकी सेवामें ही अपनेको उत्सर्ग कर देते हैं, उनकी समस्त प्रकार की कामनाएँ इस शरीरमें ही विलीन हो जाती हैं। स्वप्नमें भी उनकी दृष्टि भोगोंकी ओर नहीं जाती। वे इस शरीरको छोड़कर सदाके लिये जन्म-मृत्युके बन्धनसे मुक्त होकर परम धाममें गमन करते हैं। वे परमात्मा बड़े-बड़े भाषणोंसे, तीक्ष्ण बुद्धि द्वारा अथवा बहुत कुछ श्रवणके द्वारा भी प्राप्त नहीं होते हैं, वे तो उन्हींको प्राप्त होते हैं, जिन पर वे कृपा करते हैं—जिनको वे अपनी कृपाका पात्र चुन लेते हैं। जो अपनी बुद्धि या साधन पर भरोसा न करके केवल भगवानकी कृपाकी ही प्रतीक्षा करता रहता है, उसी पर भगवान कृपा करते हैं और अपनी मायाका परदा हटाकर उसके सामने अपना स्वरूप प्रकाश करते हैं।

सबके आत्मारूप परब्रह्म परमेश्वर उपासनारूप बलसे रहित मनुष्य द्वारा प्राप्त नहीं होते। वे आलसी, तप और साधन हीन, वर्णाश्रम-चिह्नरहित देखावटी अवधूतवेशधारी मनुष्योंको अपना दर्शन नहीं देते। परन्तु जो बुद्धिमान व्यक्ति समस्त कामनाओंको छोड़कर एकमात्र भगवत् साक्षात्कारकी अभिलाषासे निरन्तर भगवानके चिन्तनमें निमग्न रहते हैं, ब्रह्मधाममें पहुँचनेमें समर्थ होते हैं। विशुद्ध अन्तःकरणवाले सर्वथा आसक्तिरहित ज्ञानतृप्त महर्षिगण उनको पाकर पूर्णकाम हो जाते हैं; उन्हें किसी प्रकारका अभाव बोध नहीं होता। जिन्होंने वेदान्त शास्त्रके सम्यक ज्ञान द्वारा उसके अर्थस्वरूप परमात्माको भलीभाँति जान लिया है तथा कर्मफल और आसक्तिका सर्वथा त्याग करनेके कारण जिनका अन्तःकरण पूर्णरूपेण पवित्र हो चुका है, ऐसे प्रयत्नशील साधक मरणकालमें शरीरका त्याग कर परम अमृत स्वरूप होकर संसार-बन्धनसे सदाके लिये छुटकारा पा लेते हैं। वैसे महापुरुषोंके शरीर-त्यागके समय उनकी पन्द्रह कलाओं सहित मन (पञ्च महाभूत, पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ और पञ्च कर्मेन्द्रियाँ; अथवा श्रद्धा, आकाशादि पञ्च महाभूत, इन्द्रिय, मन, अन्न, वीर्य, तप, मन्त्र, कर्म, लोक और नाम—ये पन्द्रह कलाएँ हैं) सब इन्द्रियोंके देवताके साथ स्व-स्व अभिमानी समष्टि देवतामें मिल जाते हैं। जीवन्मुक्त पुरुषोंका इनके साथ कोई सम्बन्ध नहीं रह जाता। उनके समस्त कर्म और विज्ञानमय आत्मा—सब-के-सब परमब्रह्ममें स्थित हो जाते हैं। किस प्रकार अवस्थित होते हैं, उसे अगले मन्त्रमें बतलाते हैं—जिस प्रकार बहती हुई नदियाँ अपना-अपना नाम-रूप छोड़कर समुद्रमें विलीन हो जाती हैं, वैसे ही ज्ञानी पुरुष जड़ नाम और जड़ रूपसे रहित होकर परात्पर पुरुषको प्राप्त हो जाते हैं। उनका तनिक भी जड़ परिचय नहीं रहता। जिस प्रकार एक पक्षी जङ्गलमें विलीन होने पर वह वनके किसी एक भागमें अपने घोंसले आदिमें छिप जाता है—जङ्गलमें मिलकर एक नहीं हो जाता अर्थात् जङ्गल नहीं बन जाता, उसी प्रकार जीवात्मा भी परमात्मामें लीन हो जाता है—का तात्पर्य यह नहीं कि जीवात्मा भी परमात्मा हो जाता है; वरन् उसका तात्पर्य यह है कि जीव अपने स्व-स्वरूपमें अवस्थित होकर ब्रह्मधाममें स्थित हो जाता है। जो उन परब्रह्मको जान लेता है, वह ब्रह्मकी तरह अपहतपाप्मा, बुढ़ापारहित, मृत्युरहित, शोकरहित, विजिघत्स,

पिपासारहित, सत्यकाम और सत्यसंकल्प—आठ गुणोंसे युक्त हो जाता है। इन आठ गुणोंका किसी जीवमें आविर्भाव होने पर वह ब्रह्म-स्वरूप कहा जाता है। ऐसा जीव शोक और पापसे रहित होकर जन्म-मरणसे मुक्त होकर हृदयमें स्थित सब प्रकारके संशय, देहाभिमान, विषयासक्ति आदि ग्रन्थियोंसे सर्वथा छूट कर अमर हो जाता है।

जो मनुष्य अपने-अपने वर्ण, आश्रम और परिस्थितिके अनुसार निष्काम भावसे यथायोग्य कर्म करते हैं, वेदके यथार्थ अभिप्रायको समझ जाते हैं और परब्रह्मका तत्त्व-जिज्ञासु होकर उनकी उपासनामें तत्पर रहते हैं, जो एकर्षि नामक प्रसिद्ध प्रज्ज्वलित अग्निमें शास्त्रविधिके अनुसार हवन करते हैं तथा विधिपूर्वक ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं, वे ही इस ब्रह्मविद्याके अधिकारी हैं। इस ब्रह्मविद्याका अंगिरा ऋषिने शौनक ऋषिको उपदेश दिया था। विधिपूर्वक ब्रह्मचर्यका पालन किये बिना इस ब्रह्मविद्याका अधिकारी नहीं हुआ जा सकता है।

—त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति भूदेव श्रौती महाराज

जैव-धर्म

[गताङ्कसे आगे]

विजय—'नित्य प्रियाओंके नामोंको पृथक्-पृथक् सुननेकी बड़ी उत्कंठा हो रही है।'

गोस्वामी—'स्कन्द पुराण तथा प्रह्लाद-संहिता आदि शास्त्रोंमें राधा, चन्द्रावली, विशाखा, ललिता, श्यामा, पद्मा, शैव्या, भद्रिका, तारा, विचित्रा, गोपाली, धनिष्ठा, पाली आदिके नामोंका उल्लेख है। चन्द्रावलीका दूसरा नाम सोमाता है तथा श्रीमती राधिकाका दूसरा नाम गान्धर्वा है। खंजनाक्षी, मनोरमा, मङ्गला, विमला, लीला, कृष्णा, शारी, विशारदा, तारावली चकोराक्षी, शंकरी और कुंकुम आदि व्रजांगनाएँ भी लोकप्रसिद्ध हैं।'

विजय—'इनका परस्पर क्या सम्बन्ध है?'

गोस्वामी—'ये गोपियाँ युथेश्वरी हैं। युथ एक-दो नहीं हैं, सैकड़ों हैं। इन युथोंमें विभक्त वराङ्गनाओंकी संख्या भी लाखों है। श्रीमती राधासे लेकर कुंकुमा तक सब-के-सब युथाधिपति कहलाती हैं। विशाखा, ललिता, पद्मा और शैव्याका प्रोह्य भावसे वर्णन किया गया है। इन युथेश्वरियोंमें राधा आदि आठ गोपियाँ अधिक सौभाग्यवती होनेके कारण 'प्रधाना' कही गयी हैं।'

विजय—विशाखा, ललिता, पद्मा और शैव्या—ये प्रधाना गोपी हैं और कृष्णकी लीलापुष्टिमें विशेष पटु हैं, इनको स्पष्टरूपमें युथेश्वर क्यों नहीं कहा गया है?

गोस्वामी—'ये जैसी गुणवती हैं, इनको युथाधिप कहना ही उचित था; परन्तु श्रीमती राधिकाके परमानन्दमय भावके प्रति ललिता और विशाखा इतनी मुग्ध रहती हैं कि वे अपनेको स्वतन्त्र युथेश्वरी कहलाना नहीं चाहतीं। इनमें कोई-कोई श्रीमती राधाके अनुगत होती हैं और कोई-कोई चन्द्रावलीके।

विजय—'मैंने सुना है कि ललिताका गण है, वह किस प्रकार है?'

गोस्वामी—'श्रीमती राधाजी समस्त युथेश्वरियोंकी प्रधाना हैं। उनके अधीन युथोंकी गोपियाँ श्रीललिताजीके किसी विशेष भावके प्रति आकृष्ट होकर अपनेको ललिताका गण कहती हैं और उसी प्रकार कुछ गोपियाँ अपनेको विशाखा आदिका गण

बतलाती हैं। ललिता, विशाखा आदि अष्ट सखियाँ श्रीमती राधिकाकी अलग-अलग गणनायिका हैं। बड़े भाग्यसे श्रीमती ललिताके गणमें प्रवेशाधिकार प्राप्त होता है।'

विजय—इन गोपियोंके नाम किन-किन शास्त्रोंमें पाये जाते हैं?'

गोस्वामी—'पद्मपुराण, स्कन्दपुराण, भविष्योत्तर आदि शास्त्रोंमें इनके नाम पाये जाते हैं। सात्त्वत-तंत्रमें भी अनेक नाम पाये जाते हैं।'

विजय—श्रीमद्भागवत जगत्में शास्त्र शिरोमणि हैं। यदि श्रीमद्भागवतमें इनके नामोंका उल्लेख होता तो बड़े आनन्दकी बात होती।'

गोस्वामी—'श्रीमद्भागवत तत्त्वशास्त्र होने पर भी रसके समुद्र हैं। रसिक लोगोंकी विचार-दृष्टिसे श्रीमद्भागवतमें रस तत्त्वका सम्पूर्ण विचार गागरमें सागरकी भाँति भरा हुआ है। इसमें श्रीराधाके नाम और समस्त गोपियोंके भाव तथा परिचयका वर्णन बड़े ही गूढ़ रूपसे किया गया है। यदि तुम दशम स्कन्धके पद्योंका भलीभाँति विचार करो, तो उसमें सब कुछ पा सकते हो। श्रीशुकदेव गोस्वामीने अनाधिकारी व्यक्तियोंको दूर रखनेके लिये गूढ़ रूपमें इस विषयका वर्णन किया है। विजय! एक नामकी माला और दो-चार सजी-सजायी बातें किसीको देनेका क्या फल है? पाठक जितने उन्नत विचारका होता है, वह उतनी ही गूढ़ बातोंको समझ सकता है। अतएव जो विषय सबके सामने प्रकट करने योग्य नहीं हो, उसे गूढ़ रूपसे प्रकट करना ही पाण्डित्य है। अधिकारी व्यक्ति अपने अधिकार-के अनुसार उतनेसे ही ग्रहण कर लेता है। श्रीगुरु परम्पराके बिना वस्तु तत्त्वका ज्ञान नहीं होता। किसी प्रकार उसे जान लेने पर भी उससे कोई कार्य नहीं होता। उज्ज्वलनीलमणिको भलीभाँति समझ लेने पर श्रीमद्भागवतमें ही सम्पूर्ण रसको पा सकते हो।

इस प्रकार बहुत देर तक जिज्ञासा और उत्तरके पश्चात् उस दिनकी इष्टगोष्ठी समाप्त हुई। विजय श्रवण किये हुए विषयका चिंतन करते-करते वास-स्थानको लौटे। नायक-नायिका सम्बन्धी विचार-समूह उनके मानस क्षेत्रमें उदित होकर उनको परमानन्दमें विभोर कर रहे थे। वंशी और स्वयं-दूतीकी बात स्मरण कर उनके नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा प्रवाहित होने लगी। पिछली रातको सुन्दराचल जाते-जाते उन्होंने उपवनमें जो लीला देखी थी, वह लीला इस समय उनके चित्तपटल पर स्पष्ट रूपसे उदित हो गयी।'

बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त।

तेतीसवां अध्याय

मधुर रसविचार

आज विजयकुमार और व्रजनाथ इन्द्रद्युम्न सरोवरमें स्नान कर घर लौट कर साथ ही प्रसाद-सेवा किये। भोजनके पश्चात् व्रजनाथ श्रीहरिदास ठाकुरकी समाधिका दर्शन करने चले गये। विजय-कुमार श्रीराधाकान्त मठमेंश्री गुरुदेवके चरणोंमें उपस्थित हुए और समय देख कर श्रीमती राधाकी कथा जिज्ञासा की। विजयने पूछा—प्रभो! श्रीवृष-भानुनन्दिनी ही हम सबोंके प्राण हैं। कह नहीं सकता, न जाने क्यों श्रीराधिका नाम सुननेसे मेरा हृदय द्रवित हो जाता है। यद्यपि श्रीकृष्ण ही हमारे एकमात्र गति हैं, तथापि श्रीराधिकाके साथ उनका जो लीला-विलास होता है, उसीका आस्वादन करना

मुझे अच्छा लगता है। जिस कृष्ण-कथामें श्रीमती राधिकाका नाम नहीं होता, राधिकाजीकी कथा नहीं होती, उस कथाको सुननेको जी नहीं चाहता। प्रभो! क्या कहूँ, मुझे विजयकुमार भट्टाचार्यके नामसे अपना परिचय देना अब तनिक भी अच्छा नहीं लगता। मुझे तो अपनेको श्रीराधिकाकी पाल्यदासी बतलानेमें आनन्द आता है। एक और विचित्र बात यह है कि अब मुझे कृष्ण-बहिर्मुख लोगोंके निकट व्रजकी लीला-कथा बोलनेकी इच्छा नहीं होती। अरसिक मनुष्य जहाँ श्रीराधाकृष्णका माहात्म्य वर्णन करते हैं, उस समाजसे उठकर चले जानेकी इच्छा होती है।

गोस्वामी—'तुम धन्य हो! अपनेको जब तक सम्पूर्णरूपसे व्रज-रमणी होनेका विश्वास नहीं हो जाता, तबतक श्रीराधा-कृष्णके लीला-विलासकी कथाओंमें अधिकार नहीं होता है। पुरुषोंकी तो बात ही क्या, किसी देवीका भी राधाकृष्णकी कथाओंमें अधिकार नहीं है। विजय! मैंने तुम्हारे निकट जिन कृष्णकी प्रियाओंके सम्बन्धमें चर्चा की है, उनमें राधा और चन्द्रावली सर्वप्रधाना हैं। उन दोनोंकी करोड़ों-करोड़ोंकी संख्यामें नवयुवतियोंकी युथें हैं। महारासके समय सैकड़ों-करोड़ ललनाओंने रासमण्डलमें योग-दान कर रासमण्डलकी शोभा बढ़ायी थी।'

विजय—प्रभो! चन्द्रावलीके करोड़ों-करोड़ों युथ हैं, वे रहें, मुझे तो आप कृपा कर श्रीमती राधाका माहात्म्य श्रवण करा कर मेरे दूषित कर्णको शोधित और रससे पूर्ण करें। मैं आपकी शरणमें आया हूँ।'

गोस्वामी—'अहा विजय, राधा और चन्द्रावलीमें श्रीराधाजी—महाभाव स्वरूपा हैं, अतएव वे सब गुणोंमें और सब विषयोंमें चन्द्रावलीसे बढ़ चढ़ कर हैं। देखो, तापनीश्रुतियोंमें वे 'गान्धर्वा' कही गयी हैं। ऋक्के परिशिष्टमें राधाके साथ माधवकी अतिशय उज्ज्वलताका वर्णन है। पद्मपुराणमें भी नारदजी कहते हैं —श्रीमती राधा जिस प्रकार कृष्णको बड़ी प्यारी हैं, उनका कुण्ड भी कृष्णको उतना ही प्यारा है। सारी गोपियोंसे बढ़कर श्रीराधा रानी कृष्णको अधिक प्रिय हैं। हो क्यों नहीं? राधातत्त्व क्या ही अपूर्व चमत्कार तत्त्व है? भगवान की समस्त प्रकारकी शक्तियोंमें 'ह्लादिनी' नामक जो सर्वश्रेष्ठ महाशक्ति है, राधिका उस ह्लादिनीके भी सार-स्वरूप महाभाव-स्वरूपा हैं।

विजय—'अपूर्व तत्त्व! राधाका स्वरूप बतलाईये।'

गोस्वामी—'श्रीमती सर्वदा सुठुष्कान्त स्वरूपा (अत्यन्त सुन्दर विग्रहवाली), सोलह शृङ्गार धारण करनेवाली और बारह आभरणोंसे विभूषित हैं अर्थात्-राधाजी सोलह शृङ्गार और द्वादश अभूषणों से मण्डित अतीव सुन्दरी हैं।'

विजय—'सुष्ठुकान्तस्वरूप किसे कहते हैं?

गोस्वामी—'स्वरूपकी सुन्दरता इतनी अधिक होती है कि उस सुन्दरतामें शृङ्गार और अलंकारोंकी आवश्यकता नहीं होती। सुकुंचित केश-कलाप, चंचल वदनकमल, बड़ी-बड़ी आँखें और वक्षोदेश पर सुन्दर कुचद्वय अपूर्व शोभाका विस्तार करते हैं। पतली कमर, कुछ झुके हुए दोनों सुन्दर कन्धे और नखरूपी रत्नोंसे सुशोभित करपल्लव स्वरूपकी सुन्दरतामें चार चाँद लगा रहे हैं। त्रिजगत्में इस रूपकी कहीं भी तुलना नहीं है।

विजय—'षोडश शृङ्गार कौन-कौन हैं?

गोस्वामी—'स्नान, नासिकाके अग्रभागमें मणिकी उज्ज्वलता, नील वसन धारण, कटिप्रदेशमें निवी, वेणी, कानोंमें उत्तंस, अङ्गोंमें चन्दन-लेपन, केशमें पुष्प-विन्यास, गलेमें माला, हाथोंमें लीलाकमल, मुखमें ताम्बुल, चिबुकमें कस्तुरी-बिन्दु नेत्रोंमें काजल, गुलाबी गालोंपर मृगमद द्वारा रचित चित्र, चरणोंमें अलक्त और ललाट पर तिलक—ये सोलह शृङ्गार हैं। श्रीमती राधिका इन सोलह शृङ्गारोंसे सर्वदा सुशोभित रहती हैं।'

विजय—'बारह आभरण कौन कौन हैं?'

गोस्वामी—'चूड़ामें पिरोई हुई अपूर्व उज्ज्वल मणि (शीषफूल), कानोंमें स्वर्णकुण्डल, नितम्बके

उपर स्वर्ण निर्मित करधनी, गलेमें सोनेका हार, कानों में वल्लियाँ और स्वर्ण-शलाका, हाथोंमें कंकण, कंठ में कंठभूषा, अँगुलियोंमें अँगुरियाँ, गलेमें ताराहार, भुजाओंमें बाजूबन्द, चरणोंमें रत्नोंके नूपुर और पैरकी अँगुलियोंमें अँगुरी—ये द्वादश आभरण श्रीराधाके अंगों पर सुशोभित रहते हैं।'

विजय—'श्रीराधाके मुख्य-मुख्य गुणोंको बतलाने की कृपा करें।'

गोस्वामी—'श्रीकृष्णकी तरह श्रीमती राधाके भी असंख्य गुण हैं। इनमें २५ मुख्य गुण हैं—

(१) वे मधुरा अर्थात् देखनेमें अनुपम सुन्दरी हैं।

(२) नवयुवती अर्थात् किशोर वयसवाली हैं।

(३) चंचल दृष्टि या चंचल कटाक्षोंवाली हैं।

(४) उज्ज्वलमृदुमधुर हास्यकारिणी हैं।

(५) सुन्दर सौभाग्यको सूचित करनेवाली रेखाओंसे युक्त हैं।

(६) अपने अङ्ग-गंधसे माधव (कृष्णको भी उन्मत्त करनेवाली हैं।

(७) संगीत-विद्यामें पारदर्शिनी।

(८) रम्यवाक् अर्थात् मधुरवाणी बोलनेवाली।

(९) नर्म्मपण्डिता अर्थात् परिहास करनेमें पटु।

(१०) विनीता।

(११) करुणापूर्ण अर्थात् दयालु।

(१२) विदग्धा अर्थात चतुरा।

(१३) सब कार्योंमें चातुरीयुक्ता।

(१४) लज्जाशीला।

(१५) सुमर्यादा अर्थात् साधु मार्ग पर अटल रहने वाली।

(१६) धैर्यशालिनी।

(१७) गंभीर।

(१८) सुविलासा अर्थात् सुविलास प्रिय।

(१९) महाभावके परमोत्कर्षको प्रकट करनेमें परम व्यग्रा।

(२०) गोकुल प्रेमवसति अर्थात् उनको देखते ही गोकुलवासियोंके हृदयमें प्रेम उमड़ पड़ता है।

(२१) अखिल ब्रह्माण्डमें उनकी कीर्त्ति व्याप्त है।

(२२) गुरुजनोंके स्नेहकी पात्री।

(२३) सखियोंके प्रणयके अधीन होती हैं।

(२४) कृष्णकी सब सखियोंमें प्रधाना।

(२५) केशव सर्वदा उनकी आज्ञाके अधीन रहते हैं।

विजय—चारुसौभाग्य-रेखाओंको विस्तारसे जानना चाहता हूँ।

गोस्वामी—'वराहसंहिता, ज्योतिःशास्त्र, काशी-खण्ड और मत्स्य, गरुड़ादि पुराणोंके अनुसार सौभाग्यकी ये रेखाएँ हैं—

(१) वाम चरणके अँगूठेके मूलमें जौ-रेखा (२) उसके नीचे चक्र, (३) मध्यमाके नीचे कमल, (४) कमलके नीचे ध्वजा, (५) वही पताका, (६) मध्यमाके दक्षिणसे चलकर मध्यचरण तक ऊर्द्ध्वरेखा, (७) कनिष्ठाके नीचे अंकुश, पुनः (१) दक्षिण चरण के अँगूठेके मूलमें शंख, (२) एड़ीमें मछली, (३) कनिष्ठाके नीचे वेदी, (४) मछलीके ऊपर रथ, (५) पर्वत, (६) कुण्डल, (७) गदा, (८) शक्तिचिह्न। बाँये हाथमें—(१) तर्जनी और मध्यमाके संधिस्थान से कनिष्ठके नीचेतक परमायु-रेखा, (२) उसके नीचे हाथसे तर्जनी और अँगूठेके मध्यदेशकी दूसरी रेखा, (३) अँगूठेके नीचे मणिबन्धसे चलकर वक्रगतिसे मध्यरेखासे मिलकर तर्जनी और अँगूठेके मध्यभागकी अन्य रेखा अँगुलियोंके अगले भागमें नन्द्यावर्तरूप अर्थात् पाँच चक्राकार चिन्ह; कुल मिलाकर आठ हुए, (९) अनामिकाके नीचे कुंजर, (१०) परमायु रेखाके नीचे वाजि, (११) मध्यरेखाके नीचे वृप, (१२) कनिष्ठाके नीचे अँकुश, (१३) पंखा, (१४) श्रीवृक्ष, (१५) यूप, (१६) बाण, (१७) तोमर, (१८) माला, (१९) दाहिने हाथमें बाँये हाथकी तरह परमायु आदि तीन रेखायें, अँगुलियोंके अगले भागमें पाँच शंख; कुल मिलाकर आठ, (९) तर्जनी के नीचे चामर, (१०) कनिष्ठाके नीचे अँकुश, (११) प्रासाद, (१२) दुन्दुभी, (१३) वज्र, (१४) दो शकट, (१५) धनुप, (१६) तलवार, (१७) भृंगार (पानी पीनेका) बाँये पैरमें सात, दाँये पैर में

आठ, बाँये हाथमें अट्ठारह और दाँये हाथमें सत्रह, कुल मिलाकर पचास चिह्न सौभाग्य-रेखा हैं।

विजय—'क्या ये गुण दूसरोंमें संभव नहीं हैं ?'

गोस्वामी—'जीवमें ये गुण बिन्दु-बिन्दुरूपमें हैं। श्रीराधिकामें ये गुण-समूह पूर्णरूपमें हैं। देवियोंमें अन्य जीवोंसे कुछ अधिक परिमाणमें होते हैं। श्रीराधाके सारे गुण अप्राकृत होते हैं। क्योंकि प्राकृत जगतमें किसीमें भी ये गुणसमूह विशुद्ध और पूर्णरूपमें नहीं हैं। गौरी आदिमें भी इन गुणोंकी स्थिति शुद्ध और पूर्णरूपमें नहीं होती।'

विजय—'अहा ! श्रीमती राधिकाके गुण अचिन्त्य हैं। उनकी कृपासे ही उन गुणोंका अनुभव किया जा सकता है।,

गोस्वामी—'उनके गुणोंकी महिमा क्या कहूँ; स्वयं कृष्ण भी जिस रूप और गुणको देखकर सर्वदा मोहित रहते हैं, उसकी तुलना कहाँ है ?'

विजय—'प्रभो ! कृपया अब श्रीमती राधिकाकी सखियोंके सम्बन्धमें बतलावें।'

गोस्वामी—'श्रीमती राधिकाका युथ ही सर्वश्रेष्ठ है। उस युथकी सारी ललनाएँ सर्वसद्गुणोंसे विभूषित होती हैं। वे अपने गुणोंसे—विलासविभ्रम से साक्षात् कृष्ण को भी आकर्षण करती हैं।

विजय—'श्रीमती राधाकी सखियाँ कितने प्रकार की है ?'

गोस्वामी—'पाँच प्रकारकी होती हैं-(१) सखी, (२) नित्यसखी, (३) प्राणसखी, (४) प्रियसखी, (५) परम प्रेष्ठसखी।'

विजय—'सखी कौन हैं ?'

गोस्वामी—'कुसुमिका, विन्द्या, धनिष्ठा—ये 'सखी हैं।'

विजय—'नित्यसखी कौन हैं ?

गोस्वामी—'कस्तुरी, मणिमंजरी, आदि 'नित्यसखी' हैं।'

विजय—'प्राणसखी' कौन कौन हैं ?'

गोस्वामी—'शशीमुखी, वासन्ती, लसिका आदि प्राणसखी हैं। ये प्रायः वृन्दावनेश्वरीकी स्वरूपता प्राप्त हैं।.

विजय—'प्रिय सखी कौन हैं ?'

गोस्वामी—'कुरङ्गाक्षी, सुमध्या, मदनलसा, कमला, माधुरी, मुंजकेशी कन्दर्पसुन्दरी, माधवी, मालती, कामलता, शशिकला आदि प्रियसखी हैं।

विजय—'परमप्रेष्ठसखी कौन कौन हैं ?'

गोस्वामी—'ललिता, विशाखा, चित्रा, चम्पकलता, तुङ्गविद्या, इन्दूलेखा, रंगदेवी, सुदेवी,—ये आठ प्रधाना और परमप्रेष्ठ सखी हैं। ये राधाकृष्ण के प्रेमकी पराकाष्ठायुक्त होती है। कभी कृष्णके प्रति और कभी राधाके प्रति अधिक प्रेम प्रदर्शनकर राधाकृष्णको सन्तुष्ट करती हैं।

विजय—'युथको समझ गया। अब गणके सम्बन्धमें बतलाइये।'

गोस्वामी—'प्रत्येक युथमें पुनः कई विभाग होते हैं, इन विभागोंको गण कहते हैं। जैसे—श्रीमतीके यूथमें ललिताकी अनुगत सखियाँ ललिताके गण हैं।'

विजय—'व्रजङ्गनाओंका परोढ़ाभाव एक महद् गुण है, परन्तु यह परोढ़ा भाव किस स्थान पर इष्ट बोध नहीं होता ?'

गोस्वामी—'इस जड़ जगत्में जो स्त्रीत्व और पुरुषत्व है, वह औपाधिक होता है। मायिक कर्मफलके अनुसार कोई अभी स्त्री है, कोई पुरुष है। मायामें अनेकों अधर्म और तुच्छ स्पृहाएँ होती हैं। इसलिये ऋषियोंने शास्त्र-विधिसे विवाहित स्त्रीको छोड़कर दूसरी स्त्रियोंका संग करनेके लिये निषेध किया है। इसको धर्मसंगत समझानेके लिये कवियोंने जड़ालङ्कारमें परोढ़ाको छोड़ दिया है। चिद्विलास रसही नित्यरस है। उस नित्यरसका हेय-प्रतिफलन ही मायिक स्त्री-पुरुषगत शृंगार-रस है। अतएव जड़ीय शृंगाररस अत्यन्त सीमित और विधिके अधीन होता है। इसीलिये प्राकृत क्षुद्र नायिकाके सम्बन्धमें परोढ़ा-भावको छोड़ दिया गया है। परन्तु

जहाँ सच्चिदानन्द श्रीकृष्ण ही एकमात्र पुरुष अर्थात् नायक हैं, वहाँ रस-पुष्टिके लिये जो परोढ़ा-मिलन होता है, वह निन्दाका विषय नहीं होता। इस तत्त्व-में अत्यन्त क्षुद्र मायिक उपाधिस्वरूप विवाह-विधिका स्थान नहीं है। वे गोलोक-विहारी जब अपने परम परकीय रसको प्रपंचमें गोकुलके साथ प्रकाशित करते हैं, तब गोकुलकी ललनाओंके विषयमें जड़ अलंकारगत परोढ़ानिन्दा लागू नहीं होती।'

विजय—'गोकुलकी ललनाओंमें जो कृष्णप्रेम होता है, उसमें प्रधान-प्रधान कौन-कौनसे चिह्न प्रकाशित होते हैं ?'

गोस्वामी—'गोकुल ललनाओंका कृष्णमें केवल नन्दनन्दनत्व ही स्फुरण होता है अर्थात् वे कृष्ण-को केवल नन्दनन्दनके रूपमें ही ग्रहण करती हैं। उस निष्ठासे जो सब भाव एवं मुद्राएँ उदित होती हैं, वे, अभक्त तार्किक लोगोंकी तो बात ही क्या, भक्तों-के लिये दुर्गम होती हैं। नन्दनन्दनमें ऐश्वर्यभावका अभाव नहीं होता, परन्तु माधुर्यकी अधिकताके कारण प्रायः छिपा हुआ रहता है। जिस समय परिहास करते हुए कृष्णने विरह-व्याकुला गोपियोंके सामने अपने द्विभुज रूपको छिपाकर चतुर्भुज रूप प्रकाश किया, गोपियोंने उस चतुर्भुज रूपका आदर नहीं किया था। फिर वह चतुर्भुज रूप श्रीराधिकाजीके सामने आते ही लुप्त हो गया और द्विभुजरूप प्रकट हो गया। यह सब श्रीराधाके निगूढ़ पारकीय रस-भावका ही फल है।'

विजय—'धन्य हुआ। प्रभो! अब नायिकाका भेद बतलाइये।'

गोस्वामी—'नायिका तीन प्रकारकी हैं—स्वकीया, परकीया और सामान्या। चिद्रसकी स्वकीया और परकीयाके सम्बन्धमें पहले बतलाया हूँ। इस समय सामान्याके सम्बन्धमें बतला रहा हूँ। जड़ालङ्कारिक पण्डितोंने स्थिर किया है कि सामान्या नायिका वेश्या होती हैं, वे केवल अर्थ-लोभी होती हैं। गुणहीन नायकसे द्वेष और गुणी नायकसे वे प्रेम नहीं करतीं, उनको अर्थ प्रिय होता है। अतएव उनका शृंगार केवल मात्र शृंगारका आभास होता है—वास्तविक शृंगार नहीं होता। किन्तु मथुराकी सैरिन्ध्री कुब्जा सामान्या नायिका होने के कारण उसमें कृष्णसम्बन्धी शृंगार रसका अभाव होने पर भी किसी प्रकार भावयोग्य होनेसे उसे हम परकीयाके अन्तर्गत ही मानते हैं।'

विषय—'वह भावयोग्यता क्या है ?'

गोस्वामी—'कुब्जा जब तक कुरूपा थी, तब तक उसकी अन्यत्र कहीं भी रति नहीं थी। कृष्णका रूप दर्शनकर उसके हृदयमें कृष्णके अंगोंमें जो चन्दन लगानेकी स्पृहा पैदा हुई, वही उसका प्रियत्व भाव है। इसीसे उसे परकीय कहा जा सकता है। परन्तु पट्ट महिषियों जैसी कृष्णको सुख प्रदान करने-की कामना कुब्जामें उदित नहीं हुई थी। अतएव उसकी रति महिषियोंकी रतिसे न्यून जातीय है, इसी-लिये वह कृष्णके उत्तरीय वस्त्रको खींचती हुई उनसे रतिकी प्रार्थना की थी। प्रियत्व भावके साथ स्वार्थ-भावनाका सम्मिश्रण रहनेके कारण उसकी रति साधारणी है।'

विजय—चिद् रसमें स्वकीया और परकीया नायिका-भेद हुए। अब इनमें और किसी प्रकारका भेद हो तो कृपा कर बतलाइये।'

गोस्वामी—'चिद्रसमें स्वकीया और परकीया दोनों प्रकारकी नायिकाएँ ही मुग्धा, मध्या और प्रगल्भा तीन-तीन प्रकारकी होती हैं।'

विजय—'प्रभो! आपकी कृपासे अब चिद्रसका स्फुरण होने पर मुझे ऐसा लगता है कि आप व्रजा-ङ्गना हैं, तब मायिक पुरुष भाव कहाँ चला जाता है, उसका मुझे तनिक भी पता नहीं चलता। अब मुझे नायिकाओंका भाव-भेद जाननेके लिये अत्यन्त उत्सु-कता हो रही है। क्योंकि रमणी-भाव प्राप्त करके भी उपयुक्त क्रियावान नहीं हो पाता हूँ। अतएव आपमें वही भावना अंकित करके कृष्णसेवा करनेके लिये

आपके चरणकमलोंमें जिज्ञासा कर रहा हूँ। बतलाइये, मुग्धा कौन है ?

गोस्वामी—'मुग्धाका लक्षण यह है—वे नवयौवना, कामिनी, रतिदानमें वाम्यभाववाली, सखियोंकी वशीभूता, रतिचेष्टामें अतिशय लज्जायुक्ता, अथच गोपन रूपमें (दूसरोंकी दृष्टिमें छिपकर) सुन्दर रूपमें यत्नशीला होती हैं। नायक अपराधी होने पर वे सजल नयनोंसे नायकको देखती हैं, प्रिय-अप्रिय कुछ भी नहीं बोलतीं, मान भी नहीं करतीं।'

विजय—'मध्या कैसी होती हैं ?'

गोस्वामी—'मध्याका लक्षण यह है—उनका मदन और लज्जा दोनों समान-समान होते हैं। वे नवयौवना होती हैं, उनकी बोली में कुछ-कुछ प्रगल्भता होती है। सुरत क्रियामें (संभोगमें) मोह अर्थात् मूर्च्छा तक इन्हें अनुभव होता है, मानके समय कभी मृदु और कभी कर्कशा होती हैं। मानके समय मध्या नायिका तीन प्रकारकी हो सकती हैं—धीरा, अधीरा, धीराधीरा। जो नायिका अपराधी प्रिय नायकके साथ परिहास करती हुई वक्रोक्ति करती है, वे धीरा मध्या हैं। जो नायिका क्रोधपूर्वक अपने प्रिय वल्लभको कर्कश वाणियोंसे निषेध करती हैं, वे अधीरा मध्या हैं। और जो नायिका अश्रुपूर्ण नयनोंसे प्रिय व्यक्तिके प्रति वक्रोक्ति प्रयोग करती हैं, वे धीराधीरा मध्या हैं। मध्या नायिकामें मुग्धा और प्रगल्भाका संमिश्रण रहनेके कारण मध्यामें ही सवरसोत्कर्ष लक्षित होता है।'

विजय—'प्रगल्भाके लक्षण आदि बतलानेकी कृपा करें।'

गोस्वामी—'जो नायिका पूर्णयौवन, पदान्ध, और रतिके विषयमें अत्यन्त उत्सुक होती हैं वे प्रगल्भा हैं। वे अपने भावोंको प्रचुर रूपमें प्रकट करनेमें पटु होती हैं। वे प्रेमरसके द्वारा प्रियतमको आक्रमण करनेमें समर्थ होती हैं। उनकी उक्तियाँ और चेष्टाएँ अतिशय गंभीर और प्रौढ़ होती हैं। मानकी क्रियामें अत्यन्त कर्कशा होती हैं। मानके समय वे तीन प्रकारकी होती हैं—धीरा, अधीरा और धीराधीरा। धीरा प्रगल्भा संभोगके विषयमें उदासीन, भावोंको गोपन करनेवाली और आदरकारिणी होती हैं। अधीरा-प्रगल्भा निष्ठुर होकर कान्तको धमकाती हुई ताड़न करती हैं—डाँटती-डपटती हैं, दण्ड देती हैं। धीराधीरा प्रगल्भा, धीराधीरा नायिकाकी भाँति गुणशीला होती हैं। ज्येष्ठा और कनिष्ठा भेदसे मध्या और प्रगल्भा दोनों दो-दो प्रकारकी होती हैं—ज्येष्ठमध्या और कनिष्ठमध्या, ज्येष्ठप्रगल्भा और कनिष्ठ प्रगल्भा। नायकके प्रणयके अनुसार ही ज्येष्ठ और कनिष्ठ-भेद उदित होता है। क्रमशः

चेतावनी

क्यौं तू गोबिंद नाम बिसारौ ?
अजहूँ चेति, भजन करि हरि कौ, काल फिरत सिर ऊपर भारौ ॥
धन-सुत-दारा काम न आवैं, जिनहिं लागि आपुनपौ हारौ।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु, चल्यौ पछिताइ, नयन जल ढारौ ॥

—सूरदास

श्रीचैतन्य-महाप्रभु

[पूर्व प्रकाशित वर्ष ५, संख्या १०-११ पृष्ठ २२७ के आगे]

ऐसे व्यतीत करते निशि औ दिवा को ।
चारों दिशान जग में भरते प्रभा को ॥
आया विचार मन में कर तीर्थ यात्रा ।
होवें तभी फलवती निज देह यात्रा ॥६१॥

गौरांग शम्भु सिर पै कल क्रीडती जो ।
नागेश-अंक-रज में नित लोटती जो ॥
धारा-अनेक धरिकें मृदु मालती सी ।
छाती सदैव उर में गिरि के, सुका सी ॥६२॥

प्यारी अनंग अरिकी, हर-पाद-वासी ।
न्यारी सुरेश-कर-पात्र-बनी छटा सी ॥
गंगा उमंग भरती अघ ओघ नासी ।
आती सुअंक जिसके, कल धाम कासी ॥६३॥

गंगा कलोल करती जिसके किनारे ।
सानंद जीव रहते जहँ वृद्ध वारे ॥
न्यारे नितान्त जगसे रहते संन्यासी ।
रासी सभी सुखोंकी, गृह मोक्ष कासी ॥६४॥

अम्बा अनंत जगकी, सुख शील रासी ।
पाते निजंत जिससे नरकान्त वासी ॥
छाई छटा छिति छपाकर ज्योति नासी ।
गौरी गुणावलिवती प्रिय शम्भु कासी ॥६५॥

छाती कहीं पुलिन पै छतरी मढ़ी है ।
मानों अटूट धन सी पुनिकी गढ़ी है ॥
बैठी हुई जहाँ साधु मुनि की जमातें ।
गोविन्द कृष्ण हरि कृष्ण सुगीत गाते ॥६६॥

देखी गई कहुँ लगी यति की समाधी ।
चैती हुई कहुँ चिता कहुँ पूर्ण, आधी ॥
पाती प्रमोद प्रमदा घटवारि न्यारी ।
जाते समीप जिसके नर और नारी ॥६७॥

बाला सभी ससि मुखी जल गंग में जा ।
देती उतार सिरसे निज वस्त्र को जा ॥
पाता खुला मुख तभी उपमा निराली ।
मानों घिरा कमल पै चहुँधा फनाली ॥६८॥

राका पती वदन पै अरि राहु धाया ।
कै धौं प्रकाश गन पै तम तोम छाया ॥
छाते निशीश सम आनन नारियों के ।
माते सुरक्त कर वारिज वारियों के ॥६९॥

धोती ललाम मुख को युवती सभी हैं ।
भ्राता कलंक हरता अरविन्द भी है ॥
देती उछाल जल को कर से लली है ।
मुक्ता सुगुच्छ अथवा पुहुपावली है ॥७०॥

चैतन्य देव चलते पथ में पधारे ।
काशी सुधन्य लखि कें उमगे अपारे ॥
न्हाये निमाइ मणिकर्णिक तीर जाके ।
गंगा पवित्र-तरनी शुभ गीत गाके ॥७१॥

—श्रीशंकरलाल चतुर्वेदी, एम. ए., साहित्यरत्न ।

प्रचार–प्रसंग

श्रीश्रीआचार्य्यदेवका श्रीउद्धारण गौड़ीय मठमें शुभागमन

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके संस्थापक एवं आचार्य ॐ विष्णुपाद परमहंस परिव्राजकाचार्य्य-वर्य १०८ श्री श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजी ६५ दिनोंतक पश्चिम बङ्गके मेदनीपुर और चौबीस परगना जिलोंके लगभग ६०-७० गाँवों का तुफानी दौराकर वहाँ शुद्ध भक्तिका प्रचार कर श्री श्रीसच्चिदानन्दभक्ति विनोद ठाकुरके तिरोभाव और श्री श्रीरथयात्रा महोत्सवसे पूर्व श्रीउद्धारण गौड़ीयमठ चुचुड़ामें पधारे हैं। स्मरण रहे कि श्री आचार्य्यदेवकी प्रचार-यात्रा ६ वैसाख, १९ अप्रैल को आरम्भ हुई थी और इनके साथ २०-२५ ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थी और संन्यासी भक्तजन थे। इन विभिन्न स्थानोंमें आचार्य्यदेवने ६५ दिनोंमें लगभग पैंसठ भाषण दिये हैं। प्रत्येक दिन एक एक गाँवमें एक-एक विराट् धर्म-सभाका आयोजन होता था और वहाँ आचार्य्यदेवका प्रवचन या भाषण होता था। कुछ ही दिनोंमें उनकी उत्तर प्रदेश और आसाममें प्रचार यात्रा आरम्भ होने वाली है।

वर्द्धमान, हुगली और विहार प्रदेशके विभिन्न स्थानोंमें शुद्ध भक्तिका प्रचार

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके अन्यतम प्रचारक त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराज कतिपय ब्रह्मचारियोंके साथ पश्चिम बङ्गके वर्द्धमान जिलेके सिंगा, मीरहाट, सीधाबाड़ी, मिहीजाम; हुगली जिलाके भण्डार हायर आदि अनेक गाँवोंमें तथा विहार प्रदेशके संथालपरगना जिलेके गरोईनाला, बोदमा, बेवा, जामतारा, पंजनिया, दुमका, बादिका, नयाडीह, आसनबनी और सारसाजोल आदि स्थानोंमें श्रीचैतन्य महाप्रभुकी प्रेम-वाणीका प्रचारकर श्रीरथयात्रासे पूर्व श्रीउद्धारण-गौड़ीयमठ चुचुड़ामें लौटे हैं।

मेदनीपुरमें

समितिके प्रचारक श्रीपाद् श्रीनिवास दासाधिकारी महोदय कतिपय ब्रह्मचारियोंके साथ मेदिनीपुर जिलेके सुदूरग्राम अंचलके विभिन्न स्थानोंमें शुद्ध भक्तिका प्रचार कर श्री श्रीरथयात्रासे पूर्व श्रीउद्धारण गौड़ीय मठमें लौटे थे। मठमें श्री श्रीरथयात्राका महोत्सव सुसम्पन्न होनेके पश्चात् वे पुनः कतिपय ब्रह्मचारियोंको साथ लेकर वर्द्धमान जिलेके कटवा ग्राम एवं आसपासके गाँवोंमें श्री श्रीचैतन्य महाप्रभुकी वाणीका प्रचार करनेके लिये पधारे हैं।

श्रीश्रीभक्तिविनोद ठकुरके तिरोभाव और श्रीश्रीरथयात्राका महोत्सव

श्री उद्धारण गौड़ीय मठ चुचुड़ामें---

गत १०आषाढ़,२४ जून, शुक्रवार शामको गौड़ीय वैष्णवाचार्य्य कुलतिलक नित्यलीला प्रविष्ट ॐविष्णुपाद श्री श्रीमद्भक्ति विनोदठाकुरके तिरोभाव तिथिके उपलक्ष्यमें ॐविष्णुपाद् १०८ श्री श्रीमद्भक्ति प्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजकी अध्यक्षतामें एक विराट सभाका आयोजन किया गया था। त्रिदण्डि स्वामी श्री श्रीमद्भक्ति वेदान्दमुनि महाराज, त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्ति वेदान्त त्रिविक्रम महाराज एवं अन्यान्य वक्ताओंके भाषणोंके पश्चात् श्री श्रीआचार्य्यदेवने अत्यन्त प्रभावोत्पादक एवं अमूल्य उपदेशोंसे पूर्ण अपने अध्यक्षीय-भाषणमें

श्रीठाकुर महाशयके अतिमर्त्य चारित्र और उनकी शिक्षापर महत्वपूर्ण प्रकाश डाले।

दूसरे दिन ११ आषाढ़को प्रातःकाल विराट नगर संकीर्तनके उपरान्त श्री श्रीगुण्डिचा मार्जन महोत्सव विराट धूमधामसे सम्पन्न हुआ। तीसरे दिन १२ आषाढ़को रथयात्रा, १६ आषाढ़को हेरापंचमी और २० आषाढ़को पूर्णयात्राके उत्सव बड़े समारोह के साथ सम्पन्न हुए हैं। १० आषाढ़से २० आषाढ़ तक प्रति दिन प्रवचन, कीर्तन, छायाचित्र द्वारा भाषण हुए हैं तथा २० आषाढ़को सर्वसाधारणको महाप्रसाद वितरण किया गया है।

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ मथुरामें विरहोत्सव

गत १० आषाढ़ शुक्रवारको श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ मथुरामें आधुनिक युगमें शुद्ध गौड़ीय वैष्णव धाराको पुनः प्रवर्त्तन करने वाले सप्तम गोस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुरका विरहोत्सव विराट समारोहके साथ सम्पन्न हुआ है। त्रिदण्डि स्वामी श्रीश्रीमद् भक्ति वेदान्त नारायण महाराजके सभापतित्वमें एक विरह सभाका आयोजन किया गया था, जिसमें श्रीरामगोपाल ब्रह्मचारी, श्रीकृष्ण स्वामी ब्रह्मचारी और हरिदास ब्रजवासी, आदि वक्ताओंने श्रीठाकुर महाशयके अतिमर्त्य चरित्र और उनकी शिक्षाओंके सम्बन्धमें भाषण दिये। अन्तमें सभापति महोदयने अपने सारगर्भित भाषणमें उक्त विषय पर सुन्दर और विस्तृत रूपसे प्रकाश डाला।

राष्ट्रीय स्वयं-सेवक-संघ, मथुराकी शिवाजी शाखाके गुरुदक्षिणा समारोहमें श्रीभागवत पत्रिकाके सम्पादक

गत २१ आषाढ़, ५ जुलाई, मङ्गलवारको राष्ट्रीय स्वयं-सेवक-संघ मथुरीकी शिवाजी उद्यान शाखाका गुरु-दक्षिणा समारोह होलीवाली गलीमें धूमधामसे सम्पन्न हुआ है। इस उपलक्षमें उक्त स्थान पर सवेरे ५ बजेसे लेकर ८ बजेतक एक सभाका आयोजन किया गया था, जिसमें संघके शिक्षित नवयुवक कार्यकर्ताओंके अतिरिक्त शहरकी प्रतिष्ठित और विद्वत् मण्डली भी उपस्थित थी। संघकी शाखाके विशेष अनुरोध पर श्रीभागत-पत्रिकाके सम्पादक त्रिदण्डि स्वामी श्रीश्रीमद्भक्ति वेदान्त नारायण महाराजजीने उक्त सभामें सभापतिका आसन ग्रहण किया था। ध्वजारोहण, उद्बोधन संगीत, गुरु-दक्षिणा-अनुष्ठान आदिके पश्चात् प्रधान अतिथि श्रीयुत हीरालालजी, वाइस प्रिंसीपल बी० एस० ए० कॉलेज, मथुरा एवं शाखाके विद्वान संचालक महोदयके भाषण हुए। अन्तमें स्वामीजीने "गुरु-शिष्यका स्वरूप और उनके कर्तव्य" के सम्बन्ध एक पाण्डित्य पूर्ण सारगर्भित संक्षिप्त भाषण दिया। अन्तमें मथुराकी समस्त शाखाओंके प्रधान संचालक महोदय द्वारा शाखाके प्रधान-प्रधान कार्यकर्ताओंका परिचय स्वामीजीके साथ करानेके पश्चात् समारोह समाप्त हुआ।

श्रीश्रीसनातन गोस्वामीका विरहोत्सव

गत २४ आषाढ़, ८ जुलाई, शुक्रवार पूर्णिमा तिथिको ब्रज मण्डलमें सर्वत्र श्रीगौड़ीय वैष्णवाचार्य कुल तिलक श्रीचैतन्य महाप्रभुके प्रिय पार्षद श्रीसनातन गोस्वामीका विरहोत्सव खूब धूम-धामके साथ मनाया गया है। श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिकी समस्त शाखाओंमें यह उत्सव विशेष श्रद्धाके साथ मनाया गया है। श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति कुशल नरसिंह महाराजजीके सभापतित्वमें एक सभाका आयोजन किया गया था, जिसमें श्रीपाद प्रेमप्रयोजन ब्रह्मचारीजी, श्रीहरिदास ब्रजवासी, श्रीकृष्ण स्वामी ब्रह्मचारी आदि वक्ताओंके भाषणोंके पश्चात् त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त नारायण महाराजजीने श्रीसनातन गोस्वामीके अतिमर्त्य चरित्र और उनकी शिक्षा सम्बन्धमें ओजस्वी भाषण दिया।

—निजस्व सम्वाददाता